हस्तलिखित ग्रन्थ प्रकाशन माला

द्वितीय पुष्प

महा कवि भूषण कृत

अलंकार-प्रकाश

सम्पादक

शूरवीरसिंह पँवार

प्रकाशक

भारत प्रकाशन मन्दिर,

अलीगढ़ ।

हस्तलिखित ग्रन्थ प्रकाशन माला

द्वितीय पुष्प

महा कवि भूषण कृत

अलंकार-प्रकाश

सम्पादक

शूरवीरसिंह पँवार

प्रकाशक

भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़

प्रकाशक की ओर से

कैप्टिन शूरवीरसिंह जी के द्वारा ग्रथित 'हस्तलिखित ग्रंथ प्रकाशन-माला' के द्वितीय पुष्प 'अलङ्कार-प्रकाश' को साहित्य रसिकों की सेवा में समर्पित करते हुए मुझे परम हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस माला के प्रथम पुष्प 'फते प्रकाश' का प्रकाशन सन् १९६१ ई० में हुआ था। ''फते प्रकाश' की प्रस्तावना में 'अलङ्कार-प्रकाश' का उल्लेख हुआ था। तभी से इसके प्रकाशन के लिए विद्वानों की बड़ी माँग थी। हस्तलिखित ग्रन्थों का सम्पादन तथा प्रकाशन बड़ा दुस्तर होता है। लिपि की कठिनाई के अतिरिक्त पाठभेद, प्रतिलिपि की दुर्पाठ्यता तथा वर्तनी की अशुद्धियाँ कुछ ऐसी दुर्लङ्घ्य बाधाएँ हैं जिनका निवारण बड़ा ही समय साध्य है। फिर सम्पादन भी एक कला है। इन सब सीमाओं के कारण हस्तलिखित ग्रन्थों के प्रकाशन में कुछ त्रुटियाँ अवश्यम्भावी हैं। 'अलङ्कार-प्रकाश' का प्रकाशन इन सीमाओं के भीतर हुआ है। परन्तु संतोष यह है कि इस अप्राप्य ग्रन्थ का मुद्रित रूप साहित्य सेवियों के समक्ष आ सका। मुझे विश्वास है कि विद्वद्वर लिपि की ओर दृष्टिपात न कर भाव का आस्वादन करेंगे।

विद्वच्चरणरेणु

बद्रीप्रसाद शर्मा

शुभ-कामना

मुझे यह जानकर परम हर्ष तथा उल्लास का अनुभव हो रहा है कि कैप्टिन शूरवीरसिंह द्वारा सम्पादित 'अलंकार-प्रकाश' मुद्रित रूप में प्रथम बार विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है।

कैप्टिन साहब कर्मठ साहित्य सेवी, उद्‌भट अध्येता तथा जागरूक अनुसन्धित्सु हैं।

हस्तलिखित ग्रन्थों के संकलन में इनकी जन्म-जात रुचि है जिसके फलस्वरूप आज इनके पास इन ग्रन्थ-रत्नों की एक अमूल्य निधि एकत्र हो गई है। अनेक विद्वान तथा शोधार्थी इस निधि से लाभ भी उठा रहे हैं। इन ग्रन्थों के प्रकाशन से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में एक अच्छा योगदान होगा।

कैप्टिन शूरवीरसिंह अपने शासकीय उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुये हिन्दी की सेवा कर रहे हैं—यह उनके विद्यानुराग, हिन्दी-प्रेम तथा साहित्य-सेवा का परिचायक है। कैप्टिन साहब से हिन्दी जगत को बड़ी आशाएँ हैं।

भगवान् कैप्टिन साहब को स्वस्थ और चिरायु करें जिससे भारती की सेवा करने का उन्हें अधिक से अधिक अवसर मिले।

"सरस्वती श्रुति महती महीयताम्"

—हरवंशलाल शर्मा

प्रस्तावना

'अलंकार प्रकाश' एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिससे महाकवि भूषण का काल प्रामाणिक रूप से निश्चित हो जाता है तथा हिन्दी जगत के समक्ष 'भूषण' का अब तक का अज्ञात वास्तविक नाम भी प्रकाश में आ जाता है। महाकवि भूषण के सम्बन्ध में जो अन्वेषण अब तक हुए हैं, उनमें भूषण के काल निर्णय पर मतभेद रहा है। श्री भगीरथ प्रसाद दीक्षित ने भूषण का जन्म सम्वत् १७३८ वि० एवं मृत्यु संम्वत् १८०० वि० माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म सम्वत् १६७० वि० और मृत्यु सम्वत् १७७२ वि० लिखा है। 'मिश्रबन्धु विनोद' में भूषण का जन्म काल अनुमान से संवत् १६७० वि० और मृत्यु संवत् १७७२ वि० बताया गया है। इनके ग्रन्थ 'शिवराज भूषण', 'शिवा-बावनी', 'छत्रसाल दसक' और स्फुट छंद ही अब तक हिन्दी जगत के समक्ष आये हैं। 'मिश्रबन्धु विनोद' में मिश्रबन्धुओं ने 'भूषण उल्लास', 'दूषण उल्लास' एवं 'भूषण हजारा' नामक ग्रन्थ भी महाकवि भूषण द्वारा रचित बताए हैं, परन्तु इस उल्लेख के साथ कि 'इन तीनों ग्रन्थों का अब पता नहीं चलता'। 'मिश्रबन्धु विनोद' में महाकवि भूषण का कविता-काल संवत् १७०५ वि० माना गया है। सौभाग्य से मुझे भूषण कृत "अलंकार प्रकाश" ग्रन्थ की यह प्रति जो संवत् २०१२ वि० में उपलब्ध हुई है, इसमें ग्रन्थ का रचना काल संवत् १७०५ वि० ही है। यह ग्रन्थ दस उल्लासों में विभाजित है। संभव है इसी कारण इसका नाम 'भूषण उल्लास' भी प्रसिद्ध हो गया हो। इस सम्बन्ध में पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'भूषण' के पृष्ठ ७० पर सम्वत् २०१० वि० में यही धारणा प्रकट की थी कि "भूषण उल्लास" अलंकार प्रकरण का एक ग्रन्थ रहा होगा।

'अलंकार प्रकाश' के अन्त में भूषण ने अपना वंश परिचय इस प्रकार लिखा है—'बीराधिबीर राजाधिराज श्री राजा देवीशाह देव प्रोत्साहित त्रिपाठी रामेश्वर आत्मज कवि भूषण मुरलीधर विरचिते अलंकार प्रकाशे अविधानिरूपनो नाम दसमो उल्लासः। समाप्तम् शुभम् भूयात्।' इसी प्रकार प्रत्येक उल्लास की पुष्पिका में भूषण ने अपना परिचय दिया है।—

इस ग्रन्थ के ४३२ वें दोहे में भी भूषण ने अपना वंश परिचय इस प्रकार दिया है -

"रामकृष्ण कश्यप कुलहि, रामेश्वर सुव तासु।
ता सुत मुरलीधर कियो, अलंकार परकासु॥"

इस दोहे से भूषण के कश्यप गोत्रीय होने की भी पुष्टि होती है। ग्रन्थ का रचना काल ४३३ वें दोहे में इस प्रकार दिया गया है—

पाँच सुन्न सत्रह बरिस, कातिक सुदि छठि जानु।
अलंकार परकासु को, कवि कीनो निरमानु॥ संवत् १७०५।

महाकवि मतिराम के सम्बन्ध में भी अब तक एक भ्रम था। 'मिश्रबन्धु विनोद' तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की सम्मति है कि भूषण एवं मतिराम परम्परा से सगे भाई प्रसिद्ध हैं और 'तिकवांपुर' निवासी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र कहे जाते हैं। मुझे सौभाग्य से मतिराम कृत ग्रन्थ 'वृत कौमुदी' की छन्द रत्नाकर हस्तलिखित प्रति भी उपलब्ध हुई है। श्री कृष्णबिहारी मिश्र द्वारा सम्पादित 'मतिराम ग्रन्थावली' एवं 'मिश्रबन्धु विनोद' में महाकवि मतिराम के रचित ग्रन्थों में 'छंदसार पिंगल' का नाम आया है। 'मिश्रबन्धु विनोद' से विदित होता है कि 'छंदसार पिंगल' के थोड़े से ही पृष्ठ मिश्रबन्धुओं ने देखे थे। इसी तरह श्री कृष्णबिहारीजी की 'मतिराम ग्रन्थावली' से भी

पता चलता है कि 'छंदसार पिंगल' ग्रन्थ उनके देखने में नहीं आया। श्री भगीरथप्रसाद ने 'वृत कौमुदी' को ही 'छंदसार पिंगल' ग्रन्थ माना है परन्तु श्री कृष्णविहारी मिश्र ने इन दोनों को पृथक् माना है। इन्होंने लिखा है कि श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित का कहना है कि उनको अब यह ग्रन्थ 'वृत कौमुदी' नहीं मिल रहा है। श्री कृष्णविहारी मिश्र जी के सतत प्रयास करने पर भी उनको 'वृत कौमुदी' ग्रन्थ नहीं मिला, जिससे उन्होंने 'माधुरी' एवं नागरी प्रचारिणी सभा के छपे हुए अंशों के आधार पर ही इस सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रकट की। 'छंदसार पिंगल' के नाम का पता 'शिवसिंह सरोज' से ही मिश्रजी को लगा। ग्रन्थ उन्होंने नहीं देखा। परन्तु अब 'वृत कौमुदी' के उपलब्ध होने से उपर्युक्त भ्रम दूर हो जाता है, और इस ग्रन्थ के अध्ययन करने से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि यही वह ग्रन्थ 'छंदसार पिंगल' है जिसको 'शिवसिंह सरोज' में उन्हीं महाकवि मतिराम द्वारा रचित होना बताया गया है जिन्होंने 'रसराज', 'ललित ललाम' एवं 'मतिराम सतसई' ग्रन्थों की रचना की है। भाषा एवं शैली भी इन ग्रन्थों की एक ही है। इस 'छंदसार पिंगल' ग्रन्थ की रचना महाराज स्वरूपसिंह बुन्देला के लिये महाकवि मतिराम ने 'वृत कौमुदी' नाम देकर की थी।

'वृत कौमुदी' (छंदसार पिंगल) की रचना संवत् १७५८ में हुई। इस ग्रन्थ में मतिराम ने अपने को विश्वनाथ का पुत्र तथा 'वनपुर' निवासी होना बताया है। मतिराम ने ग्रन्थ के अन्त में वंश वर्णन इस प्रकार किया है—

कविवंसवर्ननं

तिरपाठी वरणपुर वसै वत्सगोत सुनि गेह।
विविध चन्द्रमनि पुत्र तहिं गिरिधर गिरधर देह ॥ २२॥
भूमि देव बलभद्र हुव तिनतत्र मुति गान।
मंडित पंडित मंडली मंडन मही महान ॥२३॥

तिनको तनै उदार मति विश्वनाथ हुव नाम।
दुति धर श्रुतिधर को अनुज सकल गुननि को धाम ॥२४॥
तासु पुत्र मतिराम कवि निज मति के अनुसार।
सिंह स्वरूप सुजान को वरनेऊ सुजस अपार ॥२५॥
पिंगल ग्रन्थ विलोकि के कीन्हें ग्रन्थ विचारि।
भूल्यौ चूक्यौ होइ सो लीजै सुकवि सुधारि ॥२६॥
दोषन देषत सुमति जन प्रगहृत गुननि अपार।
मम क्रमभूषित करन हित तिन प्रति विनय उदार ॥२७॥
संवत् सत्रह सौ वरस अट्ठावन सुभ साल।
कातिक सुदी त्रयोदसी करि विचार सुभ काल ॥२८॥
वृति कौमुदी ग्रन्थ की सरसी सिंह सरूप।
रची सुकवि मतिराम सो पढ़ो सुनो कवि भूप ॥२९॥

महाकवि भूषण ने अलंकार प्रकाश में अपने गुरु का नाम धरनीधर बताया है, 'गुरू विषय भगति' में एक उदाहरण दिया है—

ऐसे गुरू धरनीधर पग पल्लव के पर भाव विराजै ॥२९४॥

महाकवि भूषण ने 'अलंकार प्रकाश' में अपना नाम भी मुरलीधर बताया है। धरनीधर तथा मुरलीधर नाम, महाकवि मतिराम के पूर्वजों के नाम 'गिरिधर' 'दुतिधर' तथा 'श्रुतिधर' से मिलते जुलते हैं। नाम के अन्त में 'धर' की परम्परा से भी यह विदित होता है कि धरनीधर तथा मुरलीधर का मतिराम के वंश से अवश्य निकट सम्बन्ध होगा।

महाकवि मतिराम ने जो 'वृत कौमुदी' में अपने आश्रयदाताओं का वर्णन किया है उससे भी यह सिद्ध होता है कि ये वही मतिराम हैं जिन्होंने महाकवि भूषण के साथ भारत-भ्रमण किया था। मतिराम ने इस ग्रन्थ में अपने आश्रयदाताओं का वर्णन इस प्रकार किया है—

दाता एक जैसी शिवराज भयो तैसो अब,
फतेसाहि[१] सीनगर साहिबी समाज है ।
जैसो चित्तौर धनी राना नरनाह भयो,
तैसोई कुमाऊ पति पूरोरज लाज है ।
जैसे जयसिंह जसवन्त महाराज भयो,
जिनको मही में अजौं बढ्यो बल साज है ।
मित्र साहिनन्द सी बुन्देल कुल चंद जग,
ऐसो अब उदित स्वरूप महाराज है ॥६॥

(पंचमप्रकाश)

महाकवि भूषण ने शिवराजभूषण के २४९ वें छंद में अपने आश्रयदाताओं का निम्नलिखित वर्णन किया है—

मोरंग जाहु कि जाहु कुमाऊ,
सिरीनगरे की कबित्त बनाये ।
बान्धव जाहु कि जाहु अमेरि, कि
जोधपुरै कि चितौरहि धाये ।
जाहु कुतुब्ब कि एदिल पै, कि
दिलीसहु पै किन जाहु बुलाये ।
'भूषन' गाय फिरो महि में,
बनिहै चित चाह शिवाहि रिझाये ।

'वृत कौमुदी' का उपर्युक्त छंद तथा 'शिवराज भूषण' का यह छंद स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि इन दोनों महाकवियों के आश्रयदाताओं में समानता थी ।

इसी तरह इन दोनों ग्रन्थों, मतिराम कृत 'वृत कौमुदी' (छंदसार पिंगल) एवं भूषण कृत 'शिवराज भूषण' में गजराज वर्णन के निम्न-

---

१ गढ़वाल नरेश फतेशाह । उस काल में श्रीनगर गढ़वाल राज्य की राजधानी थी ।

लिखित छंदों में भाव साम्य एवं भाषा सादृश्य में इतनी विलक्षण एकता है कि इन दोनों महाकवियों की आपस की घनिष्ठता स्वतः प्रकट होती है।

जिनकी गरज सुन दिग्गज वे आव होत। —शिवराज भूषण
जिनकी गरज होत दिग्गज अचेत है। —वृत कौमुदी
जकरे जंजीर और जकरे किरिर हैं। —शिवराज भूषण
जकरे रहत जे ने जालिम जंजीरन सों। —वृत कौमुदी

अलंकार प्रकाश नामक ग्रन्थ के कुछ छंदों के भाव, छंद रचना एवं लक्षण आदि की परिभाषा में जो 'ललित ललाम' से इतना अधिक सादृश्य पाया जाता है, उससे भी इसकी पुष्टि होती है कि महाकवि मतिराम ने 'ललित ललाम' में भूषण के 'अलंकार प्रकाश' से अनुकरण किया है और 'अलंकार प्रकाश' भी उसी 'भूषण' कवि की रचना है जिससे मतिराम का बन्धुत्व था, एवं जिसने 'शिवराज भूषण' की रचना की थी।

दृष्टान्त

जितहिं बिंब प्रतिबिंब गति, कवि भूषण निज होइ।
कवित्त मांझ तंह जानिये, द्रष्टान्ता पै सोइ॥
—अलंकार प्रकाश।

जग समूह जुग धर्म जंह, जिमि बिंबहिं प्रतिबिंब।
सुकवि कहत द्रष्टान्त है, जो मन दर्पन बिंब॥
—ललित ललाम।

निदर्शन

एक अर्थ की सरस जंह, अर्थ दूसरो ठानु।
कवि भूषण कहि कवित में, तहां निदर्शन जानु॥—अलंकार प्रकाश

सरस वाक्य जुग अर्थ को, जहाँ एक आरोप ।
बरनत तहाँ निदर्शना, कवि जनमत अति ओप ।।—ललित ललाम

अनन्वय

एकहि को जो कीजिये, उपमिति अरु उपमान ।
वाहि अनन्वय कहत हैं, कवि भूषण कवि जान ।।

—अलंकार प्रकाश ।

जहाँ एक की बात को, उपमेयो उपमान ।
तहाँ अनन्वै कहत है, कवि मतिराम सुजान ।। —ललित ललाम

व्याजस्तुति

कीजै निंदा पै जहाँ, बहुत बड़ाई होइ ।
करत बड़ाई निंदई, जित व्याजस्तुति सोइ ।।—अलंकार प्रकाश

निंदा में स्तुति पाइये, स्तुति में निंदा होइ ।
व्याज स्तुति सो कहत है, कवि कोविद सब कोइ ।।

—ललित ललाम

'अलंकार प्रकाश' की रचना संवत् १७०५ वि० में होना सिद्ध है और 'शिवराज भूषण' की रचना संवत् १७३० वि० में, जैसा शिवराज भूषण के इस छंद से पाया जाता है—

सम सत्रह से तीस पर, सुचि वदि तेरह मान ।
भूषण शिव भूषण कियौ, पढ़ियौ सकल सुजान ।।

'ललित ललाम' संवत् १७१८ से संवत् १७१६ में रची गई है और बूंदी नरेश भाऊसिंह का राज्य काल १७१५ से १७३८ तक था। भूषण का महाकवि मतिराम से जेष्ठ होना सभी अन्वेषकों ने माना है । 'अलंकार प्रकाश' के रचना काल से भी इसकी पुष्टि होती है । 'अलंकार प्रकाश' भूषण का प्रथम ग्रन्थ प्रतीत होता है । 'वृत कौमुदी'

के अध्ययन से इन दोनों कवियों का सगा भाई होने का भ्रम भी दूर हो जाता है। इनको जो वंश-भास्कर मुंशी देवीप्रसाद, शिवसिंह सेंगर एवं श्री गुलामअली बिलग्रामी आदि ने भाई-भाई होना लिखा है (प्रमाण किसी ने नहीं दिया) उससे एवं इनकी आपस में उपर्युक्त घनिष्ठता होने से यह विदित होता है कि वे मौसेरे या ममेरे भाई रहे होंगे। बनपुर से त्र्यंबकपुर (तिकवांपुर) में जाकर इनका बसना सिद्ध होता है। ये स्थान एक दूसरे के बिल्कुल समीप हैं। आयुर्वेदवृहस्पति श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल आयुर्वेद पंचानन, साहित्यवाचस्पति, प्रयाग का जो पत्र मुझे इस सम्बन्ध में मिला उससे भी इसकी पुष्टि होती है। पत्र को उद्धृत करना मैं आवश्यक समझता हूँ जो इस प्रकार है—

श्रीमतेभारद्वाजायनमः

आयुर्वेदवृहस्पति पं० जगन्नाथप्रसादशुक्ल आयुर्वेदपञ्चानन
भिषङ्मणि, साहित्यवाचस्पति

सुधानिधि कार्यालय

३ सम्मेलनमार्ग, प्रयाग।
ति० कार्तिक शुक्ल १३ सं० २०१२ वि०
ता० २७—११—५५ ई०

प्रियवर कैप्टन साहब

शुभाशीर्वाद।

आज अमृत पत्रिका में आपका कवि भूषण सम्बन्धी लेख पढ़ा। आपने बड़ा परिश्रम कर अनुसन्धान किया है। कई वर्ष पहले मैं बनपुर (नौगवां) गया था। मतिराम का परम्परागत मकान भी देखा था। उस समय एक बुढ़िया मकान में थी। मतिराम वत्सगोत्री तिवारी थे और भूषण कश्यप गोत्रीय तिवारी थे। बनपुर में भूषण का ननिहाल था। भूषण का बाल्यकाल बनपुर में ही व्यतीत हुआ था।

समर्थ होने पर टिकमपुर गये थे। मतिराम के वंश का उस समय बोल-बाला था। मतिराम भूषण के ममेरे भाई थे। यही आपने सिद्ध किया है। यही महत्व की बात है। आपके उद्योग से जो महत्वपूर्ण बातें प्रकट हो रही हैं वह साहित्यिक क्षेत्र के लिये महत्वपूर्ण हैं।

भवदीय

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

महाकवि भूषण के 'शिवराज भूषण' का निम्नलिखित छंद ही अब तक उनके वंश परिचय का आधार रहा है। उससे भी उनका त्र्यंबकपुर में केवल बसना ही विदित होता है।

दुज कनौज कुल कश्यप, रत्नाकर सुत-धीर।
बसत त्र्यंबकपुर नगर, तरनि तनूजा तीर॥

अब प्रश्न यह है कि 'अलंकार प्रकाश' के उपर्युक्त छंद तथा 'शिवराज भूषण' के छंद में पिता के नाम में जो अन्तर मिलता है उसका क्या समाधान है। मेरा मत यह है कि 'रत्नाकर' महाकवि भूषण के पिता रामेश्वर का उपनाम था। जिस प्रकार मुरलीधर कवि 'भूषण' के उपनाम से प्रसिद्ध हुये उसी तरह उनके पिता रामेश्वर 'रत्नाकर' नाम से प्रसिद्ध हुए होंगे। कवियों में यह प्रथा थी कि अपना नाम अथवा उपनाम (छाप) छंदों में उपर्युक्त स्थान पर रखते थे। इसी तरह भूषण ने इस छंद में अपने प्रसिद्ध 'भूषण' उपनाम के साथ-साथ अपने पिता रामेश्वर का 'रत्नाकर' उपनाम लिखना उचित समझा। 'अलंकार प्रकाश' में कवि ने अधिकतर 'भूषण' उपनाम से ही अपने को व्यक्त किया है। परन्तु वहाँ अपना नाम मुरलीधर भी लिखा जहाँ अपने पिता का वास्तविक नाम रामेश्वर कहा।

इस सम्बन्ध में यह बात भी विचारणीय है कि उस काल में बहुधा रत्नाकर सुधाकर, आदि नाम नहीं होते थे वरन् रामेश्वर, शंकर,

विश्वनाथ आदि नाम अधिक प्रचलित थे। भूषण की अन्य रचनाओं की तरह इस ग्रन्थ के प्रकाश में न आने का कारण यह भी हो सकता है कि महाकवि भूषण उस काल में वीर रस के प्रतिनिधि कवि विख्यात हो चुके थे और संभव है इसी कारण 'अलंकार प्रकाश' को उन्होंने स्वयं भी ख्याति न दी हो।

यद्यपि 'शिवराज भूषण' की रचना 'अलंकार प्रकाश' के लगभग २५ वर्ष पश्चात् हुई तथापि दोनों ग्रन्थों के कतिपय लक्षणों में भाषा एवं शैली की पर्याप्त समता पाई जाती है। निम्नलिखित तीन उदाहरणों में यह साम्य विलक्षण रूप से लक्षित होता है।

समुच्चय—

बहुती बातनि को जहां एकहि सो संजोग।
ताहि समुच्चय कहत हैं 'कवि भूषन' कवि लोग॥ (अं० प्र० १८३)
एक बारही जंह भयो बहु काजन का बंध।
ताहि समुच्चय कहत हैं 'भूषन' जे मतिबंध॥ (शि० भू० २५३)

पूर्व रूप—

मिटी बात जो फेरिकै वैसे ही फिरि होइ।
तासों पूरबरूपता कविभूषण कहि कोई॥ (अलंकार प्रकाश २०२)
प्रथम रूप मिटि जात जहं फिरि वैसोई होय।
भूषन पूरब रूप सो कहत सयाने लोय॥ (शिवराज भूषण २८६)

परिसंख्या—

एकु ते एकु जु बरजि सो अनत में ठानि।
बूझै कोविन बूझिहू परिसंख्या सो जानि॥ (अलंकार प्रकाश १७३)
अनत बरजि कछु वस्तु जहँ बरनत एकहि ठौर।
तेहि परिसंख्या कहत हैं, भूषन कवि दिलदौर॥ (शि० भू० २४६)

परिसंख्या के लक्षण में 'अनत' और 'बरजि' शब्द का दोनों में उपयोग

विशेष रूप से उल्लेखनीय है। काव्यशास्त्र विषयक तत्कालीन अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा इन दोनों ग्रन्थों में क्रियावाचक तथा स्थान वाचक शब्दों में विशेष साम्य है तथा लक्षण की स्थापना में 'कहत' क्रियापद का ही दोनों में अधिक प्रयोग हुआ है। दोनों ही रचनाओं में बैसवाड़ी का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। अरबी, फारसी के शब्द भी दोनों में मिलते-जुलते हैं। दोनों ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट आभास होता है कि इन दोनों का रचयिता एक ही व्यक्ति रहा होगा।

'अलंकार प्रकाश' की प्रति उपलब्ध होते ही मेरा जो परिचयात्मक लेख इस सम्बन्ध में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' 'साहित्य संदेश' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में संवत् २०१२ में प्रकाशित हुआ और मैंने जब उसमें अलंकार प्रकाश और शिवराज भूषण के रचयिता को एक ही व्यक्ति मानकर भूषण का वास्तविक नाम मुरलीधर होना प्रकट किया, तो आगरा विश्वविद्यालय के हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ के निर्देशक डा० विश्वनाथप्रसाद ने स्वसम्पादित 'छंदो हृदय प्रकाश' की भूमिका में तथा डा० किशोरीलाल गुप्त ने हरिऔध पत्रिका में प्रकाशित 'मुरलीधर कवि भूषण कृत 'छन्दो' हृदय प्रकाश' शीर्षक लेख में मेरी उपर्युक्त मान्यता पर संशय प्रकट करते हुये कुछ तर्क दिये थे। उनके विषय में मेरा यह नम्र निवेदन है कि उक्त दोनों विद्वानों को तत्कालीन इतिहास का ज्ञान न होने से कुछ भ्रान्ति हो गई। सम्बन्धित इतिहास का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर मुझे उनकी मान्यताओं के विरुद्ध जो तथ्य मिले हैं उनको विद्वज्जन के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक समझता हूँ।

१—छन्दोहृदय प्रकाश में 'मुरलीधर तासुअन सुपंचम देवीसिंह कियउ कवि भूषण' में सुअन सुपंचम का अर्थ दोनों ही विद्वानों ने यह किया है कि मुरलीधर भूषण अपने पिता के पाँचवें पुत्र थे। बुन्देल वंश

के इतिहास से अनभिज्ञ होने के कारण ही उन्होंने 'पंचम' को 'सुअन' का विशेषण माना। वास्तव में 'सुपंचम' देवीसिंह का विशेषण है। बुन्देल वंश के इतिहास से सिद्ध है कि उसका प्रवर्तक 'पंचम' नाम से विख्यात था। काशिराज के पुत्र गहिरदेव के नाम से उनके वंशज गहरवार विख्यात हुये थे। विक्रम की १२ वीं शताब्दी में काशी के राजा दिवोदास थे। उनकी दो रानियाँ थीं। प्रथम रानी से चार पुत्र हुए और द्वितीय से पांचवा पुत्र था, जिसका नाम हेमकर्ण था। दिवोदास का स्वर्गवास होने पर उनका ज्येष्ठ पुत्र वीरभद्र सिंहासनासीन हुआ। वीरभद्र और उसके तीनों भाई सौतेले भाई हेमकर्ण को द्वेषदृष्टि से देखते और उसे पंचम नाम से सम्बोधित करते थे। हेमकर्ण और उसकी माता को उन्होंने जब काशी से निकाल दिया तो अपनी माता के आदेशानुसार हेमकर्ण 'पंचम' ने भगवती विन्ध्यवासिनी की आराधना की। एक दिन अर्धरात्रि के समय भगवती के चरणों में अपना शीश अर्पित करने के लिये उसने अपनी गर्दन पर तलवार चलाई। जगदम्बा ने प्रकट होकर तलवार छीनली, किन्तु तलवार की धार से गले से एक बूंद खून जगदम्बा के चरणों पर पड़ा। भगवती ने इसे यह वरदान दिया कि तुम्हारे रक्त से उत्पन्न सन्तान मेरे नाम से प्रसिद्ध होकर विन्ध्येला कहलायेगी और इसी विन्ध्यपर्वत की उपत्यका में सुविस्तृत भू-भाग पर राज्य करेगी तथा काशी का राज्य भी तुम्हें प्राप्त होगा। कुछ समय पश्चात भारत पर गाजीउद्दीन का आक्रमण हुआ और हेमकर्ण 'पंचम' के चारों सौतेले भाई युद्ध में काम आये। काशी गाजीउद्दीन के अधिकार में आ गई। हेमकर्ण 'पंचम' ने गाजीउद्दीन से युद्ध किया और उसे पराजित कर काशी को हस्तगत किया। उसका राज्य काशी से विन्ध्य पर्वत तक फैल गया।

मतिरामकृत वृत्तकौमुदी (छन्दसार पिंगल) द्वारा जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है इसकी पूर्णरूपेण पुष्टि होती है कि बुन्देल-

वंशी नरेश पंचम नाम से प्रख्यात थे। वृत कौमुदी में स्थान-स्थान पर इसके प्रमाण मिलते हैं। उदाहरण रूप में कुछ ही पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

१—हुव चन्द्रभान बुन्देल सोई वीरसिंह पंचम सुवन।(वृ० कौ० ११६)

२—श्री बुन्देल वीरकी मित्र नंद वीर को।
पंचम सभूप को जाँचिये सरूप को॥

३—छप्पय—महाराजधिराज वीरसिंह देव हुव।
चन्द्रभान धरनीस धीर ताको प्रसिद्ध भुव।
मित्रसाहि तिनको सुपुत्र विख्यात जगत सब।
तासु पुत्र अवतंस अवनि पंचम सरूप अब।
जासु जसु जगत अवलंब लहि मतिराम सुकवि हित चित धरिय।
रचि छन्दसार संग्रह सरस सुरभि प्रसिद्ध पद्धिति करिये॥
(वृत कौमुदी ४।३४)

४—रोज रोज पंचम सरूपसिंह महाराज वैसे वाजिराज कविराजन को दीने है। वृत कौमुदी ५।१६

डा० किशोरीलाल गुप्त ने न जाने किस आधार पर देवीशाह (जिनके लिये अलंकार प्रकाश रचा गया) को मेरा बुन्देला तथा गहरवार, कहना गलत बताया है। और लिखा है कि देवीशाह गोंड थे। यदि वह बुन्देलवंश के इतिहास का ठीक तरह अध्ययन करते तो यह भ्रान्ति न होती।

स्वयं 'अलंकार प्रकाश' से यह सिद्ध है कि राजा देवीशाह जिनके लिये कवि भूषण ने यह ग्रन्थ रचा था गहरवार बुन्देलवंश के थे। भूषण ने 'अलंकार प्रकाश' के हर एक उल्लास के अन्त में उनको इस प्रकार सम्बोधित किया है:—'गहरवार बुन्देलवंश वारिज विकासन मार्तण्ड राज्य लक्ष्मी रक्षण विचक्षण देदिण्ड महावीराधि वीर राजाधिराज श्री राजा देवी शाहि देव'।

गोंड और बुन्देला नरेशों के इतिहास के अध्ययन से स्पष्ट सिद्ध है कि गोंड वंशीय वीरसिंह देव ओरछा नरेश वीरसिंह देव बुन्देला से भिन्न थे। गोंड नरेश वीरसिंह देव के पिता का नाम रामदास था और बुन्देला नरेश (ओरछा के राजा) वीरसिंह देव के पिता का नाम मधुकर शाह था। इनके उपस्थिति काल में लगभग एक सौ वर्ष का अन्तर है। इसी प्रकार अर्जुनदास के पुत्र गोंडनरेश संग्राम शाह बुन्देला नरेश राजा रामशाह के पुत्र संग्रामशाह से भिन्न थे। गोंड नरेश संग्राम शाह का राज्य काल संवत् १५३७ वि० से १५८७ वि० तक था और बुन्देलानरेश संग्रामशाह का काल संवत् १५८० वि० से संवत् १६१२वि० तक। बुन्देला नरेश मधुकरशाह और गोंड नरेश मधुकरशाह भी दो भिन्न व्यक्ति थे। बुन्देला नरेश मधुकर शाह के नौ पुत्र थे, जिनमें किसी का भी नाम प्रेमसाहि या प्रेमनरायन नहीं था (जिसका नाम गोंड नरेशों की वंशावली में 'छन्दो हृदय प्रकाश' के पृष्ठ ५ में दिया हुआ है)। मधुकर शाह बुन्देला के एक पुत्र वीरसिंह के प्रपौत्र मतिराम के आश्रयदाता सरूपसिंह थे, जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है और जिनके लिये मतिराम ने वृत्त कौमुदी (छन्दसार पिंगल) की। रचना की, दूसरे पुत्र रामशाह के प्रपौत्र भूषण (मुरलीधर) के आश्रयदाता देवीसिंह अथवा देवीशाह थे जिनके लिये भूषण ने 'अलंकार प्रकाश' की रचना की।

गहरवार बुन्देलवंश का वर्णन केशवदास की रचनाओं 'वीरसिंह देव चरित' तथा 'कविप्रिया' में मिलता है। लाल कवि कृत 'छत्र प्रकाश' में भी गहरवार वंश का वर्णन आता है। अलंकार प्रकाश की उपलब्ध पाण्डु लिपि में भी भूषण ने अपने आश्रयदाता देवीशाह के वंश की प्रारम्भ से ही वंशावली दी है। परन्तु यह वंशावली खंडित अवस्था में है। प्रताप रुद्र नरेश के पश्चात का वर्णन इस ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं क्योंकि आगे का पृष्ठ लुप्त है। मैंने इस सम्बन्ध में गहरवार वंश की वंशावली के क्रम में बहुत से ग्रन्थों का

अध्ययन किया। 'अलंकार प्रकाश' में प्रतापरुद्र तक की दी हुई उपलब्ध वंशावली का क्रम सभी में समान मिलता है। देवीशाह और सरूपसिंह तक के वंशवृक्ष को यहाँ देना आवश्यक प्रतीत होता है, जिससे उक्त विद्वानों की भ्रान्ति का स्पष्ट निवारण हो जायेगा।
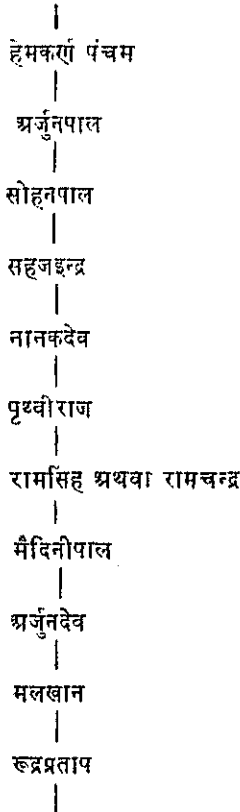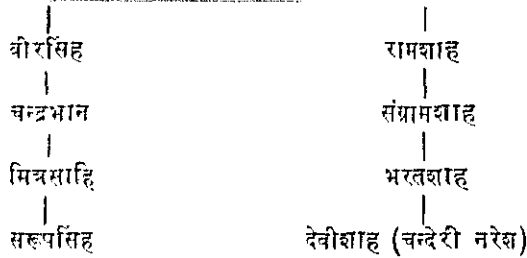
एक विशेषरूप से उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि 'अलंकार प्रकाश' की प्रथम प्रतिलिपि संवत् १८०१ में हरीराम त्रिपाठी द्वारा हुई। यह प्राचीन प्रतिलिपि श्री राधिका बख्शसिंह आकमपुर बैसवाड़ा निवासी के पास जीर्ण अवस्था में थी। उसकी प्रतिलिपि राधिका बख्शसिंह के पुत्र चन्द्र किशोरसिंह ने की और उस प्रतिलिपि में यह भी लिखा कि 'ग्रन्थ जैसा टूटा फटा मिला वैसा लिखा'। इस प्रतिलिपि में हरीराम त्रिपाठी का अपने आप को मनीराम का आत्मज बताना लिखा हुआ है। (आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित भारतीय साहित्य, अक्टूबर १९५६ पृष्ठ १६०)। यह अधिक सम्भव है कि जैसे अन्य स्थानों में भी मतिराम का 'त' भ्रमवश 'न' पढ़ा गया (देखिये पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र कृत भूषण पृष्ठ १०२) उसी प्रकार चन्द्रकिशोरसिंह ने भी यहाँ 'त' का 'न' पढ़ा हो। इसलिये यह धारणा प्रबल हो जाती है कि यह हरीराम महाकवि मतीराम के ही पुत्र रहे हों, जिनका बन्धुत्व शिवराज भूषण के रचयिता भूषण से होना प्रसिद्ध है। हरीराम का अपने आप को त्रिपाठी लिखना इसकी और भी पुष्टि करता है। हरीराम स्वयं सुशिक्षित और कविवंशज भी प्रतीत होते हैं क्योंकि प्रतिलिपि के अन्त में उनका यह दोहा मिलता है—

मैं लखि करि प्रतिरद लिख्यो जानो नहिं कछु भेउ ।
सुद्ध असुद्ध विचारि कै बुध जन दोष न देउ ॥

क्योंकि इस ग्रन्थ की कोई अन्य प्रतिलिपि उपलब्ध नहीं हुई। इससे भी यही सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ उसी वंश की निजी संपत्ति के रूप में सुरक्षित रहा होगा, जिसके वंशज हरीराम ने इसकी प्रतिलिपि की। इससे इस धारणा की और भी अधिक पुष्टि होती है कि 'अलंकार प्रकाश' महाकवि मतिराम तथा शिवराज भूषण के रचयिता भूषण की कौटम्बिक संपत्ति थी। यह ग्रन्थ 'अलंकार प्रकाश बैगवाड़ा क्षेत्र में ही उपलब्ध हुआ, जहाँ शिवराज भूषण के रचयिता भूषण तथा मतिराम अधिक काल तक एवं अन्तिम समय में रहे और जो भूभाग उनकी जन्मभूमि से मिला हुआ है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि मुरलीधर भूषण और शिवराज भूषण के रचयिता भूषण एक ही व्यक्ति थे। यह भी ध्यान देने की बात है कि 'अलंकार प्रकाश' के रचयिता भूषण और 'शिवराज भूषण' के रचयिता भूषण दोनों ने ही अपने को कश्यप गोत्री तथा त्रिपाठी बताया है। एक ही काल में दो भिन्न ग्रन्थ के रचयिता कवि का प्रसिद्ध नाम (उपाधि), जाति और गोत्र एक ही होना तथा दोनों का बुन्देल वंशी नरेशों का आश्रित होना उनकी अभिन्नता का ही सूचक है।

डा० विश्वनाथप्रसाद तथा डा० किशोरीलाल गुप्त ने रचना काल के आधार पर यह भ्रमपूर्ण निष्कर्ष निकाला कि ये दोनों कवि भूषण भिन्न व्यक्ति थे उसके विषय में मुझे यह कहना है:—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा मिश्रबन्धुओं ने शिवराज भूषण के रचयिता महाकवि भूषण का जन्म सम्वत् १६७० वि० बताया है तथा मिश्रबन्धुओं ने उनका कविता काल भी सम्वत् १७०५ वि० माना है।

शिवराज भूषण के रचयिता कवि भूषण का चिन्तामणि तथा नीलकंठ का भ्राता होना भी प्रसिद्ध है। मतिराम से उनका निकट बन्धुत्व होने का उल्लेख ऊपर आ चुका है। चिन्तामणि के ग्रन्थ "कवि कुल कल्प तरु" सम्वत् १७०७ वि० तथा "शृङ्गार मंजरी" सम्वत् १७१० वि० के हैं। 'छन्द विचार ग्रन्थ' की रचना चिन्तामणि ने शिवाजी के पिता शाहजी के आश्रय में रह कर की थी। शाहजी का ऐश्वर्यकाल सम्वत् १६८२ वि० से सम्वत् १७०२ वि० तक का था। यह भी इतिहास सिद्ध है कि चिन्तामणि शाहजहाँ के राज दरबार में भी रहे। चिन्तामणि को शाहजहाँ ने पुरस्कार दिया था तथा शाहजहाँ के पुत्र शाहशुजा के यह प्रिय पात्र थे। रुद्रसोलंकी के लिये भी इन्होंने छन्द रचना की थी, "साहेब सुलंकी सिरताज बाबू रुद्रशाह तासों रस रचत खलकत है" (सिवसिंह सरोज पृष्ठ ८९)। शाहजहाँ का राज्यकाल सम्वत् १६८४ से १७१४ वि० तक था। रुद्रसोलंकी उनके समकालीन थे। विश्वसनीय है कि सम्वत् १७०५ वि० से पहले शिवराज भूषण के रचयिता भूषण को रुद्रसोलंकी ने भूषण की पदवी दी। सम्वत् १७२३ में रचित "छन्दो हृदय प्रकाश" में 'देवीसाहि कियो कवि भूपन' देखकर यह समझ लेना कि देवीसाहि ने कवि को भूषण पदवी दी थी, भ्रान्तिपूर्ण है। उक्त कथन का अर्थ यही है कि देवीसाहि ने उसे कवियों में प्रथम स्थान दिया था। 'अलंकार प्रकाश' ग्रन्थ जो देवीशाह के लिये भूषण ने सम्वत् १७०५ वि० में रचा उससे भी सिद्ध है कि भूषण पदवी देवीशाह के आश्रय में आने से पहले ही वे पा चुके थे। 'अलंकार प्रकाश' में ऐसा कोई वर्णन नहीं मिलता कि जिससे यह सिद्ध हो कि देवीशाह ने 'भूषण' उपाधि कवि को दी थी।

डा० विश्वनाथप्रसाद का यह भी कहना है कि सम्भवतः 'अलंकार प्रकाश' एवं 'छन्दों हृदय प्रकाश' के रचयिता प्रसिद्ध मुरलीधर भूषण की

उपाधि का प्रभाव ग्रहण करके शिवराज भूषण को कवि को उसी प्रकार उपाधि दी गई हो जैसी विक्रमादित्य तथा कालिदास के प्रभाव से बाद में और भी उस उपाधि से विभूषित हुए। परन्तु रुद्रसोलंकी तथा राजा देवीशाह समकालीन ही व्यक्ति थे। देवीशाह से रुद्रसोलंकी उम्र में जेष्ठ ही विदित होते हैं। इस कारण डा० विश्वनाथप्रसाद का उपर्युक्त तर्क तथ्यहीन सिद्ध होता है।

नीलकंठ जो परम्परा अनुसार भूषण के कनिष्ठ भ्राता प्रसिद्ध हैं उनका ग्रन्थ 'अमरेस बिलास' सम्वत् १६९८ वि० का है। महाकवि मतिराम ने 'फूल मन्जरी' ग्रन्थ की रचना जहाँगीर के राज्य काल में की थी—"हुक्म पाय जहाँगीर को नगर आगरे धाम। फूलन की माला करी मति सों कवि मतिराम"—(फूल मन्जरी ६०) जहाँगीर की मृत्यु सम्वत् १६८३ विक्रमी में हुई थी।

महाकवि भूषण ने दाराशिकोह की प्रशंसा में जो छन्द लिखे हैं वह स्वयं सिद्ध करते हैं कि दाराशिकोह के ऐश्वर्यकाल में ही लिखे गये थे। दाराशिकोह का ऐश्वर्यकाल उनके भ्रातृ युद्ध सम्वत् १७१३वि० से पहले का है। दाराशिकोह ने सम्वत् १७१० वि० में कंधार पर आक्रमण किया था। उस समय उनका ऐश्वर्य उच्च कोटि पर था। भूषण ने उनको "दाराशाह" नाम से भी सम्बोधित किया है। भूषण ने दाराशिकोह की प्रशंसा में यह छन्द लिखा था—

"डंका के दिये ते उल डंबर उमड़्यो,
उडमड्यो उडमंडल लौ खुर की गरद है,
जहाँ दाराशाह बहादुर के चढ़त पेड़,
पेड़ में मड़त मारू राग बंबनद है।
"भूषन" भनत घने घुम्मत हरील बारे,
किम्मत अमोल बहु हिम्मत दुरद है,

हद्दन छद्द महि मद्द परनद्द होत,
कच्छ नमनद्द से जलद्द दलदद्द है ।

उपर्युक्त प्रमाण सिद्ध करते हैं कि डा० विश्वनाथप्रसाद एवं डा० किशोरीलाल गुप्त का यह मत कि 'अलंकार प्रकाश' के रचयिता भूषण शिवराज भूषण के रचयिता भूषण के पूर्ववर्ती थे तथा यह दोनों भिन्न व्यक्ति थे, भ्रमात्मक है ।

स्वर्गीय श्री राधिका बख्शसिंह ने आज से २४ वर्ष पूर्व सन् १९३८ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा को सूचना भेजी थी कि उनके पास भूषण रचित अलंकार प्रकाश ग्रन्थ शृङ्गार रस के सम्बन्ध का है । काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा श्री राधिका बख्शसिंह का आपस में पत्र व्यवहार भी इस विषय में हुआ था, परन्तु किन्हीं कारणों से यह ग्रन्थ उस समय प्रकाश में न आ सका । मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ कि जगदम्बा की कृपा से मैं इस ग्रन्थ को हिन्दी जगत के समक्ष ला सका हूँ ।

इस शुभ कार्य के लिये गुरुदेव डा० हरवंशलाल शर्मा एम० ए० पी-एच० डी०, डी० लिट् तथा डा० परमानन्द शास्त्री पी-एच० डी० द्वारा मुझे जो प्रोत्साहन प्राप्त हुआ उसके लिये मैं उनका चिर आभारी हूँ । पं० बद्रीप्रसाद शर्मा अध्यक्ष भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़ के प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ जिनके द्वारा यह ग्रन्थ साहित्य संसार के समक्ष इस सुन्दर रूप में आ रहा है ।

अतिरिक्त जिलाधीश निवास
अलीगढ़ ।
४ अगस्त १९६२

शूरवीरसिंह

दो शब्द

स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रथम दशक ने राष्ट्र भाषा हिन्दी को जैसा श्री सम्पन्न एवं ऐश्वर्यशाली बनाया है, वह न केवल उल्लेख्य ही है अपितु ऐतिहासिक भी। इस दशक में कतिपय नूतन मणिरत्नों की उपलब्धियां ही नहीं हुई बल्कि उसके प्राचीन संचित कोष की ओर भी देश के विद्वानों, जिज्ञासुओं और अनुसंधित्सुओं की दृष्टि गई है, और उन्होंने एकाधिक रत्नों, अलभ्य आभूषणों, अनुपम अलंकारों को प्रकाश में लाकर माँ भारती के कोष की महिमा का विस्तार किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'अलंकार-प्रकाश' एक वैसा ही सत्प्रयास है। इस 'प्रकाश' के प्रकाश में आने से अनेक नवीन तथ्य हिन्दी जगत् के समक्ष आये हैं और कुछ भ्रमों का निराकरण होकर मूल्यवान उपयोगी निष्कर्षों को स्थान मिला है। इस ग्रंथ से न केवल हिन्दी साहित्य के इतिहास के एक काल विशेष अथवा कवि विशेष को प्रामाणिकता का बल ही मिलेगा अपितु भावी समानधर्माओं को एक अभीष्ट दिशा मिलेगी।

इसके प्रकाश में आने से कविवर भूषण का काल, उनके गुरु का नाम, उनका जन्म स्थान, वंश परिचय, ग्रंथ लेखन, कविवर मतिराम के साथ उनका सम्बन्ध आदि बातें हिन्दी साहित्य प्रेमियों के समक्ष एक प्रकार से निर्णीत रूप में आ जाती हैं। अतः ग्रंथ का नाम 'प्रकाश' अन्वितार्थ ही है।

जैसा कि ग्रंथ की पुष्पिका से सूचित होता है, स्वयं भूषण ने इसे अलंकार-प्रकाश' नाम दिया और अपनी अल्ल-'त्रिपाठी'-तथा पितृनाम रामेश्वर' देते हुये अपना मूलनाम 'मुरलीधर' भी दिया है। वस्तुतः

इस पुष्पिका से ग्रन्थ के रहस्यों का उद्घाटन स्वयमेव ही हो जाता है। इस ग्रंथ को प्रकाश में लाने वाले कैप्टेन शूरवीर सिंह जी का अपना अनुमान उचित ही लगता है कि संभवतः इस 'अलंकार प्रकाश' का ही उपनाम 'भूषण उल्लास' हो। उपनामों के घटाटोप ने कविवर भूषण को जितना आच्छादित कर रखा है उतना शायद ही किसी अन्य कवि को किया हो। उनके पिता रत्नाकर उपनाम से विख्यात थे। उनका स्वयं का नाम भूषण उपनाम ही है अतः यह ग्रन्थ भी उपनाम के झमेले में फंसकर 'भूषण उल्लास' प्रसिद्ध हो गया हो। क्योंकि जहाँ भूषण के अन्य ग्रन्थ उपलब्ध हैं वहाँ काव्यशास्त्र का वह ग्रन्थ चर्चा का विषय बनकर भी सलाहप में नहीं मिलता है हाँ अलकार प्रकाश निर्विवाद रूप से भूषण का अलंकार ग्रन्थ है, इस नाम से जिसकी हिन्दी साहित्य के पूर्ववर्ती समर्थ लेखकों ने चर्चा नहीं की है। उपनामों के झमेले का कोई अन्य कारण नहीं, इसमें भी भारतीय-परम्परा ही कारण भूत रही है। हमारे यहाँ अपना नाम गुरु का नाम, पत्नी का नाम तथा ज्येष्ठ पुत्र के नाम लेने की परिपाटी नहीं है। यह शालीनता का परिष्कृत रूप है। संभवतः इसी कारण रस-सिद्ध कवियों में उपनाम रखने की प्रथा सी चल पड़ी थी, जो आगे चल कर एक फैशन बन गई।

कैप्टेन साहब को प्रस्तुत ग्रन्थ की एक प्रति उपलब्ध होते ही उन्होंने इसकी जानकारी हिन्दी जगत् को दी थी। आज वही ग्रन्थ उन्हीं की प्रस्तावना के साथ हिन्दी जगत् के समक्ष प्रकाश में आ रहा है। वस्तुतः हिन्दी साहित्य के कोष की श्री वृद्धि में यह एक महत्वपूर्ण योगदान है जिसके लिये कैप्टेन शूरवीर सिंह जी सर्वथा स्तुत्य हैं। कैप्टेन साहब ने अंधकार के गर्त में विलुप्त राष्ट्र-भारती के अमूल्य कोष को नूतन प्रकाश देने के लिये अपने तेजोदीप्त जीवन के मध्याह्न का उत्सर्ग कर दिया है। यह उनका वंशानुकूल चरित ही है जिसकी

संक्षिप्त चर्चा यहाँ अप्रासंगिक न होगी। इस राजवंश ने साहित्य संगीत और कला की त्रिवेणी को पोषण देने में जो स्तुत्य योगदान दिया है उससे हिन्दी संसार को परिचित कराना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि रीतिकाल के अनेक कवि और कलाविद् इन पर्वतीय नरेशों के आश्रित रहे थे और उनकी छत्र छाया में कला और साहित्य का सृजन करते रहे। इनमें महाराजा फतेशाह तो अत्यन्त प्रसिद्ध थे। उनके समय में उनके गुणों की ख्याति सुनकर उनका आश्रय पाने वाले कवियों में भूषण, मतिराम, रतन, जटाशंकर आदि प्रसिद्ध हैं। महाराजा फतेशाह की प्रशस्ति में रतन कवि रचित 'फते-प्रकाश' एक अनुपम अलंकार ग्रन्थ अभी हाल में ही कैप्टेन साहब द्वारा संपादित एवं भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़ द्वारा प्रकाशित हुआ है। इन्हीं महाराजा फतेशाह के वंश में श्री सुदर्शन शाह हुए जो प्रसिद्ध साहित्य प्रेमी एवं प्रबल समाज सुधारक भी थे। 'सभासार' ग्रन्थ उन्होंने लिखा था। अनेक पाश्चात्य लेखकों ने उनके कार्यों की प्रशंसा की थी। उत्तराखंड के दो प्रसिद्ध महाकवि गुमानी पन्त तथा भोलाराम महाराजा सुदर्शन शाह के राज्य काल में हुये। गुमानी पन्त ने महाराजा सुदर्शन शाह के राज्याश्रय में रहकर अपनी अधिक रचनायें देव प्रयाग (गढ़वाल) में लिखी थीं। महाराजा सुदर्शन शाह के पुत्र महाराजा भवानी शाह उच्चकोटि के शासक और राज्याध्यक्ष होते हुये भी संत स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके पुत्र महाराजा प्रतापशाह उच्चकोटि के कलाविद् एवं कला मर्मज्ञ थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र महाराजा कीर्तिशाह संतों के समाराधक प्रसिद्ध साहित्य सेवी थे। कहा जाता है कि परमहंस स्वामी रामतीर्थ जी ने अपना बहुत सा समय इन्हीं महाराजा के साथ व्यतीत किया था। महाराजा कीर्तिशाह के अनुज राजकुमार विचित्रशाह साहित्य संगीत एवं कला के मर्मज्ञ एवं विद्वानों के उपासक थे। उनका एक अमूल्य चित्रसंग्रह आज भी कला-

भवन काशी की श्री वृद्धि कर रहा है। उस काल के महान् तांत्रिक एवं विद्वान् पंडित महीधर शर्मा (डंगवाल) थे जो महाराजा कीर्तिशाह की विद्वत् सभा के नवरत्नों में थे। वे राजकुमार विचित्रशाह के परम श्रद्धेय और कुल पुरोहित थे। स्वामी रामतीर्थ ने भी पंडित महीधर को महान तांत्रिक मानकर सम्मानित किया है।

राजकुमार विचित्र शाह के सुपुत्र कैप्टेन शूरवीर सिंह जी को इस महान् विद्वान की गोद में बाल्यकाल में बैठने का सौभाग्य प्राप्त होकर, भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में जो प्रेरणा मिली वही आगे जीवन में साहित्य सेवा एवं इतिहास प्रेम की लगन बनी। पंडित महीधर के पौत्र हिन्दी के विद्वान पंडित मेघनीधर हैं जो कैप्टेन शूरवीर सिंह जी के कुल पुरोहित भी हैं। उन्हीं से हिन्दी साहित्य की शिक्षा बाल्यकाल में कैप्टेन शूरवीर सिंह को मिली, यद्यपि कैप्टेन शूरवीर सिंह जी एक प्रशासकीय अधिकारी हैं किन्तु अपनी एकान्त रुचि की दृष्टि से वे पूर्ण साहित्यिक हैं। प्राचीन पाण्डुलिपियों और साहित्य-ग्रंथों की खोज उनका प्रियतम कार्य अथवा अन्यतम व्यसन है। अपनी विगत ३० वर्षों की प्रशासकीय सेवा में भारत के प्रसिद्ध विद्वानों से संपर्क स्थापित करना, प्राचीन ग्रन्थों की खोज उनका संग्रह एवं प्रामाणिक संपादन उनके रुचिकर कार्य रहे हैं। उनका अपना निजी ग्रन्थ संग्रह एक अच्छा खासा पुस्तकालय है जो अनेक अनुसंधित्सु छात्रों की चिर क्षुधा को संबल प्रदान करने में पर्याप्त समर्थ है। यही कारण है कि देश के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के शोधार्थी कैप्टेन साहब से संपर्क स्थापित किये हुये हैं। इतना ही नहीं, बल्कि विश्वविद्यालयों के समर्थ आचार्य निस्संकोच अपने छात्रों को कैप्टेन साहब के ग्रन्थ संग्रह से लाभ उठाने का सत्परामर्श देते रहे हैं। इन महानुभावों में डा० रामकुमार वर्मा प्रोफेसर हरवंश लाल शर्मा, डा० भगीरथ मिश्र आदि उल्लेखनीय हैं। पूना विश्व-

विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० भगीरथ मिश्र ने तो कैप्टेन साहब को 'जंगम तीर्थ' की उपाधि दे डाली है।

कैप्टेन शूरवीर सिंह के सम्बन्ध में हिन्दुस्तान साप्ताहिक के १७ फरवरी सन् १६५७ के अंक के पृष्ठ १७ में जो हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय के संचालक डा० सत्येन्द्र ने विचार प्रगट किये थे उसका कुछ अंश यहाँ उधृत करना उचित होगा जो इस प्रकार हैं:—

"अब तक मैं कैप्टेन शूरवीर सिंह जी को जिला अधिकारियों की तरह का ही समझता था। फतहपुर में उन से मिलने पर मुझे अपनी धारणा बदलनी पड़ी। मैंने देखा कि वह मेरी कल्पना के अधिकारी के आदर्श के अनुकूल हैं। मैं यह मानता हूँ कि जिला अधिकारी जिले के समस्त पहलुओं का अधिकारी होना चाहिये। प्रत्येक क्षेत्र में उसका निजी व्यक्तित्व हो, वह जिस जिले का अधिकारी है, उस जिले के जन जन को अपना समझे, उस की गौरव-वृद्धि को अपना कर्तव्य माने और सरकारी कामों का ऐसा तालमेल बैठाये कि सभी पूर्ण सामंजस्य के साथ विकास की ओर अग्रसर होते रहें। जितना कुछ मैं देख और समझ सका, उस से मुझे लगा कि कैप्टेन शूरवीर सिंह जिला नियोजन के प्रशासकीय और आर्थिक पहलू को भी महत्व देते चलते हैं।"

अवधी भाषा के एक अज्ञात कृष्ण भक्त कवि-संत लक्षदास या लच्छदास जो गोस्वामी तुलसीदास जी के समकालीन थे के मूल्यवान् साहित्य की खोज करके कैप्टेन साहब ने हिन्दी साहित्य का बड़ा ही उपकार किया है। एक और अन्य महा कवि संत चंद दास (अठारहवीं शताब्दी) की सामग्री आपने खोज निकाली है। संभवतः डा० रामकुमार वर्मा उपर्युक्त कवियों पर शोध-छात्रों से अनुसंधान कार्य करा

भी रहे हैं। इसी प्रकार डा० भगीरथ मिश्र एवं डा० सत्येन्द्र जी के कुछ शोध-शिष्य कैप्टेन साहब की सामग्री से गवेषणा कार्य में लाभ उठा रहे हैं। अपने फतहपुर निवास काल में कैप्टेन शूरवीर सिंह जी बहुत सी प्राचीन सामग्री की निरन्तर खोज करते रहे है। साहित्य के साथ साथ उनमें संस्कृति और राष्ट्र प्रेम भी कूट कूट कर भरा है। सन् ५७ के अमर शहीदों को अपनी श्रद्धान्जलि देते हुये (भारत १८ अगस्त सन् १९५७) उन्होंने कुछ अज्ञात शहीदों की अमर गाथा का भी परिचय दिया है। कैप्टेन शूरवीर सिंह जी केवल कुशल साहित्य अनुसंधाता ही हैं अपितु उनके अनेक गवेषणात्मक लेख भी प्रकाशित हो चुके हैं। इस प्रकार वे एक कुशल लेखक, सफल संपादक एवं सहृदय साहित्यकार भी हैं। उनका वैयक्तिक श्रद्धा पक्ष और भी बलवान् है। सन्तों, सदाचारी ब्राह्मणों एवं विद्वानों के प्रति उनकी निष्ठा अनुकरणीय है। विद्वानों से उन्हें अत्यन्त प्रेम है। आदरणीय राहुल सांकृत्यायन, श्री नारायण जी चतुर्वेदी, स्वर्गीय आचार्य चतुरसैन शास्त्री, आयुर्वेद पचानन पंडित जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, डाक्टर राम कुमार वर्मा, आशुकवि पं० जगमोहन अवस्थी, कल्याण मंदिर के अधिष्ठाता पं० देवीदत्त शुक्ल, कला-भवन काशी के आनन्द कृष्ण जी आदि महानुभावों ने कैप्टेन साहब के कला, संस्कृति एवं साहित्य-प्रेम की भूरि भूरि प्रशंसा की है। श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कालेज दिल्ली के डाक्टर महेन्द्र कुमार ने अपने अनुसंधान कार्य के लिये कैप्टेन साहब से 'छन्दसार पिंगल' नामक ग्रन्थ प्राप्त कर उनके प्रति अपना गहरा आदर-भाव प्रकट किया है। नियोजन अधिकारी के रूप में 'पंचदूत' नामक पत्रिका का सम्पादन करके कैप्टेन साहब ने अपनी अद्भुत संपादन कुशलता का भी परिचय दिया था। पंचदूत के गवेषणात्मक लेखों की पुरातन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् राहुल जी ने बड़ी प्रशंसा की थी। प्रसिद्ध राष्ट्र भक्त हिन्दी

प्राण राजर्षि पुरुषोत्तम दास जी टंडन ने तो इनके ग्रन्थ-शोध कार्य से प्रभावित होकर एक पत्र में इनको लिखा "आपने हिन्दी जगत की जो अनुपम सेवा की है उसके लिये मैं आपको बधाई देता हूँ ।"

तात्पर्य इतना ही है, कि कैप्टेन शूरवीर सिंह जी हिन्दी साहित्य के मौन आराधक हैं जिन्होंने अपने शोध-कार्य से हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि करते हुये अपनी अमूल्य अलभ्य सामग्री से हिन्दी के अनेक अनुसंधित्सु छात्रों को लाभ पहुँचाया है। आज भी हिन्दी साहित्य के शोधार्थियों के लिए उनकी बहुमूल्य सामग्री का द्वार उन्मुक्त है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'अलंकार-प्रकाश' उनके संग्रह और शोधश्रम का परिणाम है। उन्होंने अपनी प्रस्तावना में इसके रचयिता शिवराज भूषण के लेखक कविवर भूषण ही हैं यह सिद्ध कर दिया है। इस दिशा में उनके तर्क अकाट्य एवं प्रामाणिक हैं। इस प्रकार उन्होंने एक बड़े भ्रम का निराकरण करके हिन्दी जगत् को एक नवीन भेंट दी है। ऐसे सेवाभावी, मौन तपस्वी लोकेषणा से दूर, आत्म-विज्ञापन से कष्ट अनुभव करने वाले साहित्य-सेवी की सामग्री से यदि हिन्दी जगत् लाभ न उठाये तो मैं इसे एक दुर्भाग्य ही समझूंगा। अन्त में आदरणीय अग्रजतुल्य कैप्टेन शूरवीर सिंह जी को उनकी इस मौन साहित्याराधना एवं लोक-कल्याण भावना की हृदय से अभिनन्दन करता हूँ और उनके प्रति आभार प्रकट करता हुआ श्रद्धावनत हूँ ।

महा शिवरात्रि २०१६
अलीगढ़

गोवर्धन नाथ शुक्ल
एम० ए० पी-एच० डी०
रीडर, हिन्दी विभाग
अलीगढ़ विश्व विद्यालय
अलीगढ़

विषयानुक्रमणिका

विषय पृष्ठ

गणेश वन्दना १

राजवंश १ से २

छन्द:— असम्मित, अवाचक, अनुचित, निरर्थ, हतछन्द, हीन तथा अधिक, उदाहरण हीन, उदाहरण अधिक, कथित, अनत मिलाप, अनुप्रास खंडिता, समाप्त पुनरान्त, अभवन्त मत योगु, संकीरण, भग्नपक्रम, अपक्रम, खंडिता, अभतर्थान्तिर २ से ६

अर्थ दोष:—

अर्थदोष ।। हीनार्थ, कठिन, व्याहत, अर्थपुनरोक्ति, दुहक्रम, ग्राम्य, संदेहित, असम्मत, प्रसिद्धि विपरीति, विधा विपरीति, साधारण परिवृति, विशेष परिवृति, सहचराचरू, विरूद्ध संगति, दोषाकुश, दोष अदोष, अश्लेष अलंकार, प्रसाद, समता ६ से १२

शब्दालंकार:—

छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, वक्रोति, भाषा समा...... १३ से १६

अर्थालंकार:—

उपमा, स्मरण अलंकार, भ्रांति माम, संसय, तुल्ययोगिता, आवृत्ति दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शन, वितरेका, सहोक्ति,

विषय पृष्ठ

समासोक्ति, श्लेष, अप्रस्तुति, अर्थान्तरन्यास, विकस्वर, परजायोक्ति, व्याजस्तुति, आक्षेप, बिरोध, बिरोधाभास, असम्भव, एकावली, मालादीपक, सार, उदारसार, यथासंख्य, पर्याय, बहुबातैंइकठौर, परिसंखा, बूझेतेबरजिबोशब्दतेगद्ययथा, बूझे बरजिबोअर्थते, बिन बूझें बरजिबोशब्दते, बिनबूझें बरजिबोअर्थते, श्लेष ते बिचित्र बिशेषु, विकल्प समुच्चय, भलौ संयोग, अनभलौ संयोग, भलौ अन भलौ संयोग, समाधि, प्रतिनीक, प्रतीप, उल्लास, तद्गुण, पूरबरूपता, अतद्गुण, अनुगुण, अवज्ञ, प्रश्नोत्तर, पिहित, अनुहारित, व्याजोक्ति, अत्योक्ति, रसवता, प्रेम तथा उर्जस्व,

समाहित— १६ से ४१

रसनिरूपण: —

बिभावलक्षण, अनुभाव लक्षण, व्यभिचारीभावलक्षण, सातिक भाव लक्षण, थाई भाव लक्षण, सिंगार रस लक्षण, संयोग सिंगार लक्षण, हास्य रस लक्षण, करुणा रस लक्षण, रौद्र रस लक्षण, बीर रस लक्षण, युद्धबीर लक्षण, दान बीर लक्षण, दया बीर लक्षण,

भयानक रस को लक्षण, बीभत्सरस को लक्षण, अद्भुत रस को लक्षण, शांतरस को लक्षण, माया रस को लक्षण, रस को अपनी अपना विरोध, रस के विरोध को परिहासु, समय भेद ते रस बिरोध परिहासु, देश भेद ते रस बिरोध परिहासु देवभगति, गुरू विषय भगति, मुनि विषय भगति, राज विषय भगति, थाई व्यंग्य करि प्रगट, व्यभिचारी भाव व्यंजनाते, भाव शांति, भाव उदय, भावसंधि, भाव सबल, भाव

विषय पृष्ठ

भास, एक नायका को बहु नायका सो प्रेम, एक नायक को बहु नायकन सो प्रेम, भावा भास नायक ही के रति, रसन के आखर...... ४२ से ६१

शब्द शक्ति:—

व्यंजना लक्षण, व्यंजना मूल, आन अर्थ प्रतिबिम्बित, अविधा मूल व्यंजना, प्रगट क्रमके तीन भेद ताको व्यौरा, अन प्रगट क्रम के भेद ताको लक्षण, शब्द ते अलंकार व्यंग्य, कवि निबिद्ध वक्ताकी प्रौढ़ोक्ति सिद्ध, सुसिद्धि, व्यंग्य की संख्या, पद में, पदके अंश में, पद समूह में, रचना में, अखरिन में, प्रबन्धुमें, विशेषि, संदेसु, अनाहर, दुकैवो, वाच्य व्यंग्य, मध्यम काव्य विचार, गुह को लक्षण, अपहअंगु, अर्थसिद्धि, अप्रगट, संसय, काकोक्ति असुन्दर, अधम, शब्दचित्र, अर्थचित्र लक्षणा के भेदनु को विचार, अविधा निरूपण, अबिधा लक्षण, श्री राजा देवीशाहि कीनो कवित्त ६१ से ८६

* श्री गणेशाय नमः *

॥ अथ अलंकार प्रकाश लिख्यते ॥

मंडित मद उदंड गंड मंडल अति मंडन।
उत्तम सुन्ड सिंदूर पूरि पूरित खल खंडन।
एकदन्त मयमन्त जयत जेहिसंत मुदित मन।
गुण आगर सागर सुबुद्धि नागर कीरति घन।
बिबुधेश विनायक बिपति हर मुरलीधर कवि कहे सुरख।
गहि गंज विघन गंजति अवनि अनुरंजत गज मुख सुमुख ॥१॥

यथा सवैया—

गंग के तीरथ तीर शिवाशिव बैठे लये संग बाल गनेसै।
अम्बु में शीश को सो प्रतिबिम्ब सुधोखे मृणाल के लेत निसेसै।
देखि हँसै हरु गौरी तरंगनि ताकि गजानन मातु महेसै।
ऐसे कृपाल कृपाकरि देत सदा बुधि भारत नद नरेसै ॥

विधु विमलवंश। क्षत्रिय अवतंस। हुव सुकृत सारु। वुधकोऽवतारु।
तेहिकुल कुलीन। विद्याप्रवीन। जसुनाम लेत। भागत संकेत।
श्रीमहाराज। हुव काशिराज। तेहि बंशभूप। अवनी अनूप।
हुव गहेर बारु। महिमा अपारु। रनरंगधीर। जेहि नाम बीर।
पुहुमी प्रकासु। नृप करन तासु। कीनो सुवासु। काशीनिवासु।
जेहि रचेऊ गाँउ। कनतिथु सुठाउ। तिसु भयऊ पूत। संगर सपूत।
महि महीपाल। अरजुन्नपाल। तिसुभयउलाल। जगमत्तभाल।
करखा कराल। साहन्नपाल। नृपगढ़ कुमार। गुनगन अपार।
तेहि सुत नरिन्दु। हुव सहज इन्दु। हुव तनय तासु। अरिवर निवासु।
नृप जिमि गंगेउ। नोनिक्कदेउ। राजाधिराज। तस प्रथीराज।
तसुपूत जानु। जिमि तेजभानु। अरि दरद सिंह। नृपरामसिंह।

नरपति मसंदु । तसु राइचन्दु । तेहि लहेउ पूत । आहव अकूत । नृप महीमल्ल । मेदिनी मल्ल । तेहि पूत दीन । विधि रन प्रवीन । राजाधिदेव । अरजुन्नदेव । सुव तासु जानु । गुन गन निधान । आहव अनूपु । मलखान भूपु । संतान तासु । नरपति प्रगासु । गुन गन समुद्र । परताप रुद्र । अगलापृष्ठलुप्त

अथ असम्मित दोहा

जा कवित्त आखर बहुत, अल्प अर्थ अति होइ ।
कवि भूषण दूषण दरसि, कही असम्मित सोइ ।।४।।

यथा —

मानस खग वाहन बिबुध, आसन नैन गोपाल ।
तम रिपु अरि बैरी पिया, से ए देत उताल ।। ५ ।।

यह कवित्त कमल नैन गोपाल तेसे बातें लक्ष्मी देत हैं अर्थ इतनो है अखरा बहुत है ।

अथ अचाचक दोहा

जो भाषा जैसी जहाँ, कहत लोग सब कोइ ।
कला बरण जो तहं बढ़ै, घटै अचाचक सोइ ।।६।।

यथा —

व्रजभूषन हरि मन महन, जदुपति देवकि नन्द ।
वन माली वंशी धरन, श्री वृन्दावन चन्द ।।७।।

यह कवित्त महन देवकी नन्द ए अचाचक है ।

अथ अनुचित वर्णन

रस के अनुचित बरण जे, कवित मांझ जे होत ।
दूषण अनुचित बरनु तंह, तुरतहि करत उदोत ।।८।।

यथा सवैया—

सुद्धि गई दुर बुद्धि ठई अति उद्धत क्रुद्ध भयो मन जो है ।
तोसी विचक्षन के लखि लक्षन तक्षन प्रान भये पछिनो है ।

जो समुझै तौ अजी तजि मानहि मूरख काज कहा कहि को है ।
काम को अन्ड उदन्ड अडम्बर क्यों पर चन्ड चढ़ावत भौहें ॥९॥
यह कवित के अखरा शृङ्गार रस के उचित नहीं ।

अथ ने अर्थ दोहा

रूढि परोजन बिन जहाँ, करी लक्षना होइ ।
तँह कवि भूपरण के मते, कही नि आरथ सोइ ॥१०॥
चंदहि दै रथ एरकी, तुव कल कीरति राम ।
नहिन रूठि ग्ग रोजनो, यह ने आरथ नाम ।११।
रूठि कहावै प्रसिद्धि, प्रयोजन कहावै हेतु ।

अथ हत छन्द दोहा

जितने दूपन छन्द के, तिनहूँ गुनि बिन कान ।
कवित न नीको लागई, हत छन्द की ठान ॥१२॥
ओढ़े हैं पीताम्बरहि, मधुर बजावत बैन ।
सुधि बुधि भूली है सखी, घनश्यामहि लखि नैन ॥१३॥
यह कवित्त पीताम्बर घनश्याम ए द्वै पद सुनत नाही नीके लागत ।

अथ हीन तथा अधिक दोहा

जाते कवित्त में हीनता, हीन दोप सो जानु ।
अधिकाई जाने कवित, अधिक दोपु सो मानु ।१४।

अथ हीन यथा

महावीर रघुवीर जू, कीनो असुर निकन्द ।
निजभुज करि सँग्राम मथि, उपजायो जस चन्द ॥१५॥
यह कवित्त भुज मन्दर संग्राम समुद्रय सो कीनो चाहिये सो हीन है ।

अथ अधिक यथा

तरुनी के तीखन लगे नैन अब्रूरूह वान ।
हिये हमारे बिध गए, अचरज सुनहु सुजान ॥१६॥

यह कवित्त ऐसो कीनो चाहिये अवूरुह अधिक है ।

अथ कथित दोहा

कबित में एक पदहि की, बार-बार जोठान ।
कवि भूषण इमि कथित हैं, दूषन कहत सुजान ।।१७।।

यथा— सुनु सखि जबते स्याम जू, मधुवन कीनौ गौन ।
सुनु सखि तब ते सुख सबै, भये दुखन के भौन ।।१८।।

यह कवित्त सुनु सखि यह कथित है ।

अथ अनत मिलाप दोहा

जो पदु जापदु मिलि अरथ, सो पद अनत मिलन्त ।
दूपन अनत मिलाप सो, जानत कवि बुधिवन्त ।।१९।।

यथा— अति उतंग कंचुकि कुचन, इमि शोभित अभिराम ।
जग जीतन चलि पटकुटी, तानी मानहु काम ।।२०।।

यह कवित उतंग पद कंचुकी को मिलो है मिलौ कुचनि सौ चाहिये ।

अथ अनुप्रास खंडिता दोहा

अनुप्रास करि कवित में, तासु बिनाहू होइ ।
अनुप्रास खंडित कवित, दूपन कहिये सोइ ।। २१

यथा कवित्त—

दुरित हरन दुखदरन सुखीकरन मुरली धरन ते चरन शरन हो ।
दीन उद्धरन जलधर के बरन त्रिभुवन के भरन आस तरन हो ।।
रन के अरन अरिवर बिडरन, मक्षफल फरन चोनि धरन धरन हो ।
हरि बनवारी मनमोहन मुकुन्द देव चरचा निहारत भवतारन तरन हो ।।२२

यह कवित्त चौथे चरन अनुप्रास खंडित है ।

अथ समस्त पुनारान्त दोहा

अर्ध समापत हू जहाँ, जो पद उत अधिकात ।
कवि भूषण दूपन कहत, सो समाप्त पुनरात ।।२३।।

यथा— हिय हुलास सब के करन, सुधा रचित रुचिवन्त ।
सम्पूरन सीतल ससी, उगवत कुमुदिनि कंत ॥२४॥

यह कवित शशि उगवत यह अर्थ समाप्त भये कुमुदिनी कंत ही यह फेरि कीनो है ।

अथ अभवन्त मत योगु दोहा

जा कवित के अर्थ की, संगति मिलत नहिं आहि ।
तंह अभवन्त मत जोगु है, दुषन कवि कहि ताहि ॥२५॥

यथा— सीश मुकुट कुण्डल करन, पीत बसन बनमाल ।
नाम लेत हम रैन दिन, गिरवर धर गोपाल ॥२६॥

यह कवित अर्थ की संगति नाही मिलति है ।

अथ संकीरण दोहा

संगति वाले पदनि की, न्यारे न्यारे ठान ।
कवि भूषण दूषन कहत, संकीरण परमान ॥२७॥

यथा— दिन दीपति दिजराज सों, रवि सो तारति राति ।
शशि अरुणोदय उर गननि, दिनकर छवि अधिकाति ॥२८॥

दिनसों रवि रवि संगति है, दिजराजसों राति सों संगति है, शशिसों उडगनिनसों संगति है, अरुनोदयसों दिनकरसों संगति है, पै न्यारे न्यारे ठान हैं ।

अथ भग्न प्रक्रम दोहा

सकल कवित में जौन पद, गने अरथु सो ठानु ।
सो पद ठानि न ठानिये, भग्न सु प्रक्रम जानु ॥२९॥

यथा—

काहू मिलि रस बस भये, एक न मिलि परिहास ।
औरन गोपनि सों हरषि, ठानत कान्ह बिलास ॥३०॥

यह कवित कह यह पद ठानि फेरि न ठान्यो ।

अथ अयक्रम दोहा

पाछे की आगे कही, आगे की पाछहि।
कहत अयक्रम कवित में, कविभूषन विधि आहि ॥३१॥

यथा—

तरुनाई तिय तन भई, सैसव ताकी हानि।
चित चतुराई रुचि नई, गई अयानी बानि ॥३२॥

यह कवित सैसवता गई, तरुनाई भई, अयानी वानि गई, चतुराई भई ऐसो कीन्हो चाहिये।

अथ खंडित—

जापद मिलि जासों अरथु, ताविच पदुटइ आनि।
कवि भूपन दूपन कहत, पंडित की इमि ठानि ॥३३॥

यथा—

अधर धरे सखि देखि इत, कान्ह बजावत बैन।
घूंघटु पट कै रुकति क्यों, ओटहि अंचल नैन ॥३४॥

यह कवित अधर धरे बेनु अरु घूंघट पट की ओट, इन दुहूँ पद बीच बहुत पद हैं।

अथ अभतांथतर दोहा

अप्रधान परधान विधि, अर्थनि में जहँ होइ।
एकु विरोधा अर्थु कहि, अभन्तर्था तरु सोइ ॥३५॥

यथा—सती लघी हम होत ही, चिता चढ़ी वर नारि।
तरुनाई तन सुन्दरी, सोहतिरति अनुहारि ॥३६॥

यह कवित्त सती की सुन्दरता बरनत सिंगार रस बुप जतै है सो बिरोधार्थ है। एतने शब्द दोप ॥

अथ अर्थ दोप ॥हीनार्थ॥

अप्रधान पद ते जहाँ, नहि प्रधान पद पोपु।
कवित मध्य तहँ जानिये, हीन अर्थ सो दोषु ॥३७॥

यथा—

खंजन से मृग मीन से नील नलिन से नैन।
हिये दुशाल भई अली, देखत ही कवि बैन ॥३८॥

यह कवित खंजन, मृग, मीन, नलिन ई जे हैं अप्रधान पद तिनते प्रधान पद जो हैं नैन ताके हिए प्रवेश को पोषना ही आहि।

अथ कठिन दोहा

जा कवित्त अर्थ पै, समुझि जाइ वरि आइ।
ताहि कठिन दूषण कहत, कबि भूषण कविराइ ॥३९॥

यथा—

धरनि धनंजय केश ऋषि, तेज तिहारो राम।
अर्जुन कल कीरति लपै, अवनी अति अभिराम ॥४०॥

यह कवित धनन्जयअरु अर्जुन ए दोऊ तेज अरु सेत वाची है पै बरि आइ समुझियतु है।

अथ व्याहत दोहा

पूरब अरु पर अर्थ सों, कवित में होइ विरोध।
व्याहत दूपन ताहि सों, कहत सुकवि कर सोध ॥ ४१॥

यथा—

सुखदाता सुन्दर सुधर, सम्पूरन शशिमित्त।
ऐसे हरि मुख कोउ पन, कहाँ लहै कवि चित्त ॥४२॥

यह कवित्त पहिले मुख चन्द सम कहो अरु पुनि कौन की।
समता कीजै ऐसो कह्यो सो यहि भाँति विरोध है।

अर्थ पुनरुक्ति दोहा

एक वार करि अर्थ जे, दूजे कीजै ठान।
सुतो अर्थ पुन रुक्ति तहं, दूपन कहत सुजान ॥४३॥

यथा—

निह कलंक जस राम को, कीजै कह उपमान।
उपमा याको है कहा, शीश जो नहीं समान ॥४४॥

यह कवित उपमा कीजै उपमा कहि यह भाँति अर्थ पुनरुक्ति है।

अथ दुह क्रम दोहा

बुरो अर्थ पहिलै करो, भलौ अर्थ फिरि होय।
कवि भूपन दूपन कवित, दुहक्रम कहिये सोय ॥४५॥

यथा—

राम तिहारे नाम की, जापकुं हों सब भाँति।
नरकहिं जै बो सरग धौं, नाहिन मन में शान्ति ॥४६॥

यह कवित नरक पहिले कहि सरगु पाछे कह्यौ है।

अथ ग्राम्य दोहा—

जहाँ जो अनुचित अर्थ है, तहाँ जो कीजै सोइ।
ताहि ग्राम्य दूपन कहै, कवि भूपन सब कोइ ॥४७॥

यथा कवित—

कीन्हे चुरत्न के छन्द से तै कब ढेलु सी आँखिन हे रति रीझै।
ता दिन ते हरि नाजु चरै नतु लेनि हवेलिन लोचनु नीचे।
रैनि दिना इमि साथ लगै फिरै मोहित हेतु अनेह न छीछे।
गामिन ह्वे को गाय उठी लषि बैलु जु लागत धाइ कै पीछे ॥४८॥

यह कवित में ग्राम्य अर्थ प्रगट है।

अथ संदेहित दोहा—

समो न चित जा अर्थ को, तहाँ कीजिये सोइ।
कवि भूपन कहि कवित में, संदेहित इमि होइ ॥४९॥

यथा—

कहो मीत मो सो मतो, निज करि कीजै कौनु ।
उरसिज की धौं आयुधनि, दुमैं गहिये तौनु ॥५०॥

यह कवित्त उरसिज गहियै कै आयुध इहां अपनो अपना अर्थ को समो न आहि ।

अथ असंमत दोहा

जो कहिये को कवित्त में, कवि संमत नहि आहि ।
कवित मध्य सोइ कीजिये, कही असंमति ताहि ॥५१॥

यथा— पिउ आयो परदेस ते, प्राणनाथ मुख जोइ ।
सुख सागर तिय हिय उमहि, दुख तरु डारो धोइ ॥५२॥

यह कवित्त सुख सागर दुख तनु धोइ डारयो ऐसो कीबो कवि संमत नाहीं ।

अथ प्रसिद्धि विपरीत दोहा

नहि प्रसिद्धि कवि रीति जो, कवित में कीजै सोइ ।
सो प्रसिद्धि विपरीत है, दूषन कविन कहोइ ॥५३॥

यथा सवैया—

श्याम दिए विदुली दुति भाल मनो शशि पूरन अंक धरे ।
रजनी पति को लखि फूले सरोरुह आंखिन की अनुहारि करे ॥
पूषन कीजे मयूसन मूदे सरोज उरोज की सो जररे ।
अलि ऐसे सरूप बनी बनिता बर नारिहि को हियो लेत हरे ॥५४॥

यह कवित पूरन चन्द्रमा की उपमा भाल को प्रसिद्धि विपरीत है । या भांति औरो जानि बो ।

अथ विधा विपरीत दोहा

जो निखिद्श्रुति स्मृति में, सुजो कवित में होइ ।
सोइ विधा विपरीत है, दूषन कवि न कहोइ ॥५५॥

यथा— कनक कुसुम करि पूजिये, कमल नयन करि हेत ।
केतक फूल त्रिशूल सुख, संपति सब कह देत ।।५६।।

यह कवित कनक जो धतूरो तासों हरि पूजन, केतक सों उर पूजन यह विधा विपरीत है ।

अथ साधारण परिवृत

साधारण पद ते जहाँ, है विशेष पद ठान ।
साधारण परिवृत्ति सों, दूषन कहत सुजान ।।५७।।

यथा— अंजन तन वर बसन धरि, कुल छविहि समान ।
शीश मुकुट मुरली धरे, कान्ह करत कल गान ।।५८।।

यह कवित्त साधारण पद श्याम अरु सुवरन चाहिए अंजन अरु कुन्डल विशेष पदकीनों है ।

अथ विशेष परिवृत्त दोहा

है विशेष पद ते जहाँ, साधारण पद ठान ।
सो विशेष परिवृत्त है, दुषन कहत सुजान ।।५६।।

यथा — घर बन सोवत जागते, घाट बाट सुनिमित्त ।
जहाँ तहाँ बनिता वहै, चढ़ी रहै मो चित्त ।।६०।।

यह कवित्त विशेष पद पिया चाहें साधारण पद ठानिता कीन्हो है ।

अथ सहचराचरु दोहा

जाकी संगति ते अरथ, बुरो कवित में होइ ।
सुतो सहचराचारु है, दूषन कवि मुक होइ ।।६१।।

यथा— बलि पाये परसंन है अंतरीप संचार ।
एक रीठि देखै सबहि, काक देव भरतार ।।६२।।

यह कवित्त काक की संगति तैं देवतन की अवड़ाई है ।

अथ विरुद्ध संगति दोहा

सहज बैर जिनसों सदा, तेजो मिलत कवित्त ।
सो विरुद्ध संगति कही, दूपन सुनि मोमित्त ।।६३।।

यथा— चंद वदनि सरसिज नयन, कटि केहरि गज चालि।
रसी नारि नीहारि कै, मोहि रहे बन मालि ॥६४॥

यह कवित्त विरुद्ध संगति प्रगट है।

अथ दोसांकुश दोहा

पद में, पद के अंश में, पद समूह में, होत।
शब्द अर्थ के दोष सब, कहत कविन के गोत ॥६५॥
दोष होइ जो कवित में, ताहि करत जो दूरि।
सो दोसांकुश कहत हैं, तीनि भाँति सब सूरि ॥६६॥

तीनि भेद दोसांकुश के

दोष कहूँ गुन होतुहै, दोषु कहा नहि दोषु।
दोषु कहा कीने बनै, करत कवित को पोषु ॥६७॥

अथ दोषु गुन न होत यथा

भूँज कै लोथ चिता में चहूँ दिशि पीन शरीर को माँस भख्यौ।
सिरु तोरि कै हाथ निखोरिकै हाड निखोरिकै थोरिकै मूद चख्यौ।
दरबी करकै गरबी.................चलि चूसत ह्यों हरख्यौ।
बिलसै इमि प्रेत पिशाच सबै जब आँखिन आइ मसान लख्यौ ॥६८॥
यह कवित्तधृणामिलि अश्लील बरननु बीभत्सरस को गुण है।

अथ दोष अदोष यथा

मग मद मत्त मतंग मंदजिमि चन्द कलंक कामाथि नउ।
जामुन सलिल सजल जलधर जिमि नवलता भर अलि आती मित्तिउ।
अलिगन अलक अमल अंजन सिग्ररगल कलि इति मंजहि जित्तिऊ।
कवि भूषन जग झंपि रही इमि तुमहू तेपि मल कूर नर कित्तिऊ ॥६९॥

अथ अश्लेष दोहा

प्रथमहि अर्थ अश्लेष पुनि, दुजे शब्द श्लेष।
इमि अश्लेष द्वै भाँति है, मोहित चितवत अब रेखि ॥७०॥

दुहू श्लेष कौ लछन

जौन अर्थ नहि संभवत सो कवित्त में देखि ।
कारन ते पुनि संभवत, सो कहि अर्थ श्लेखि ।।७१।।

अपनी अपना बरनु जँह, हिले मिले अति होत ।
कवि भूषन सो कहत हैं, शब्द श्लेख उदोत ।।७२।।

दुहूँ को उदाहरन

सवैया --

हटि पौढ़ी हुती पलिका पर प्यारी अपार अनूपम मान पगी ।
इत हैसी घनी घन घोर घटा घुमड़ी घुमरी सुनि नींद भगी ।
चमकै चपला किलकै कल कोकिल काम कला तिय हीय जगी ।।
अली औचक हीय धरात उनींदी पिया उठि मो उर आइ लगी ।।७३।।

यह कबित्त आपुही मनावती नाइका नाइको आलिगन करै ।
यह असंमित है । सुमेह के गरजे सही आलिगन की अरु शब्द श्लेष प्रगट है ।

अथ प्रसाद दोहा

फटिक ओट जिमि अर्थ इमि, कवित माह जो होइ ।
कवि भूषन कवि कहत हैं, हुन प्रसाद गुन सोइ ।।७४।।

यथा सवैया —

सोहतु सो नेह को गहनौ नखते सिख लौं बर हारु लुरे ही ।
रातो दुकूल दिये कुच कंचुकी नील कसी उपमान जुरेही ।।
अन्जन अन्जित खंजन से उछलें चख अंचल ओट दुरे ही ।
तैं मुरली मुरलीधर को मन मोहि लियो निसु के मुसुकाइ भुरे ही ।।७५।।

अथ समता दोहा

कनक तार सम वरन जहँ, एक भाँति कर होत ।
कवित मांह वासों कहत, समता गुन कवि गोत ।।७६।।

यथा सवैया—

काननि लौं अँखिया उछलै हिलि हायन भायन चायन चाई।
नासिक सोहत ज्यों तिल फूल कपोल अमोल अतूल निकाई॥
शूल बने भुज बीच उरोज नहीं पव मारि को सूत समाई।
श्रीपति अंग अनूप तिया तन शैशव जीति जगी तरुनाई॥७७॥

अथ शब्दलंकार दोहा

रस अनुगति शब्द नि जहाँ, समता रचना आनु।
अनुप्रास वासों कहत, कवि भूषन इमि जानु॥७८

तत्र अनुप्रासन में छेकानुप्रास को लक्षन

दोहा— बरन बराबर फिरि जहाँ, आनु आनु करि ठानु।
सोई छेकानुप्रास है, कवि भूषन जिय जानु॥७९॥

यथा कवित्त—

तीनि लोक पावन, पतित पाप तावन है सुरसरि जावन जगत उद्धरन को।
दीन दुःख दावन भगत मन भावन सकलसिद्ध थावन समर्थ है सरन को।
कहै कवि भूषन सकटासुर भंजन दिपति कंज कंजन हैं तारन तरन को।
मंदन बरत मन बंदन करन करों बंदन हरन नंद नंदन चरन को॥८०॥

राजा देवीशाह नोकम

सकल सुगंध सारु सब शोभा को प्रकारु सरस सुहागु भागु दई दयो ठेलि कै।
हंसनिसोहाई अरु नैनन में चपलाई सहज सिगारु माई सुच्यो है सकेलिकै।
सखियां सयानु गुनगान ही को परमानु नृत्य को विधानु देहि रचि राख्यो मेलि कै॥
सोनेकी सुरंगताई अधर में मधुराई तिलकी किलकठाई तन नूरबेलिकै॥८१॥

दोहा— जितहि एक ही बरन की, फिर फिर कीजै ठान।
प्रगट वृत्ति अनुप्रास सो, भाषत सकल सुजान॥८२॥

यथा कवित्त—

कमल नयन कमला कर कमलकर केशव कलमख हरकेशी कंश काल है।
गोपति गोविंद गज गंजन गोवर्द्धन गिरधर गोपीनाथ गैयर गोपाल हैं।
माधव मुकुन्द मुर मरदन मायापति मदन मोहन मधु मीचुमहा माल है।
दानव दलन दामोदर दीनबन्धु देव दारिद दरन दुख दाहन दयाल हैं॥८३॥

दोहा— कवित्त माँझ सम बरन जंह, कहुँ कहुँ कीजै ठानु।
स्फुट वासों कवि कहत, अनुप्रास निजु जानु॥८४॥

देवीशाहनोक्तम्

कंजकर कर भोरु कह्यौ करि कामिनीय कमल नयन कान्ह तेरे घर आये हैं।
नागरि नवाइ नैन नीचोई निहारै नील नीरज नीकाई दूने देखत सोहाये हैं।
पाय परै पानपति पलु पलु पूमिन अपाजपरे जाके देवी देवता गनाये हैं।
चंद्रमुखी चक्षुकोर चितयो चमकि सह मानु तजे मानिनी मननिसुख पाये हैं॥८५॥

अथलाटानुप्रास—

दोहा— कछू भेद रचि अर्थ रचि अर्थ में सचि पुनरुक्ति बिलासु।
कवि भूषण कहि कवितमें हुव लाटानुप्रास॥८६॥

यथा कवित—

ध्यान कीनो धन को न ध्यान कीनो माधव जूको जान कीनो गेह को न जान की नो गुरुको
म्यानु कीनो मोह को न म्यानु कीनो मोह हीको स्यानु कीनो सूदन स्यानु कीनो सुरको॥

ज्यानु कीनो जम को न ज्यानु कीनो जमही को ज्यानु कीनो भूठ कौन ज्यानु कीन्हों पुरको ।
काम जनमु सिरानो जातु वे ही काम सुमिरौन स्यामु को रहतु राहु उरको ॥८७॥

देवीशाहनोक्तम्—

फूल उपजाई फूलमाल पहिराई पुनि फेरि फेरि वाकोमन फेर हीसों फेरिहों ।
काननलों लवाइ जाइ कान लगी मुसकाइ कालि कान बटतरे बैठि बाट हेरिहों ॥
कहत सुनारि तुम लोक में सुनारि भोहै अकल सुनारि ताहि रस ही सों गेरिहों ।
बसन बनाइ आयी बसन बनाइ आई बसन बनाये बिन तुमैं क्यों निबेरिहों ॥८८॥

दोहा— और बरन सो मिलि बरन एक भाँति पद अन्त ।
अनुप्रास इति अन्त है कहत सकल गुन वन्त ॥८९॥

यथाकवित—

दर दर फेरत निबेरत न जनु जानि बिनती नलेत मानि सठ हठ साधीहों ।
बिश्व भरतार बूझि देखो बिश्व बाहर ही मेरी बेर कहां विपरीत रीत नाधी हो ।
कहैं कवि भूषन न निजनामु लेन देत मायामोह राख्यो याते अतिही उपाधी हो ॥
हों तो अपराधी ओ उधारिहौ न मोहि कान्ह रावरी दुहाई मेरे तुम अपराधी हो ॥९०॥

१ अथ वक्रोक्ति दोहा—

जो प्रधान पद अर्थ तजि, और अर्थ उत ठानि ।
उत्तर दीजै आनि को, वक्रोक्तिक सो जानि ॥९१॥
कहूँ दुअर्थ ते होति है, काक उक्ति कहूँ होइ ।
काक उक्ति द्वै भाँति है, कहैं कवीश्वर कोइ ॥९२॥

दुअर्थ ते वक्रोक्ति

देखो गिरधर केले भूधर न देखे हम अरी मन मोहन न मेरे मन मोहु है ।
हौं तो कह्यो कहूं नरहरि मिले सुने कहूं सिंह मान सन के सौ साथ महा दोहु है ।
अलि बनमाली कत फूल फूलवाई जित जगइन सों न होतु कबहूँ बिछ्छोहु है ।
कहै कवि भूषण न देत सीधे उत्तरहि सखी कमला के उपजत जिय कोहु है ॥९३॥

काकु उक्ति ते वक्रोक्ति

मान करे हू ए सखी, मन मोहन मुख जोइ ।
को तिय ऐसी जाहिए, सुनि अलि छोहु न होइ ॥९४॥

अथ भाषा समा दोहा

एक भाँति के पदनि करि बहुती भाषनि माँह ।
कवित होइ वासों कहत भाषा सम कवि नाह ॥९५॥

यथा— मधु सूदन मुरली धरन जै मुनि मानस हंस ।
कमल न पन केशव समर संगति गंजति कंस ॥९६॥

अथ अर्थालंकार-उपमा

जित उपमति उपमान सों समता सोभा होइ ।
अलंकार कवि भूषण उपमा कहियत सोइ ॥९७॥
जाकी उपमा दीजिये सोई उपमित जानु ।
जो उपमा उत कीजिए सोई कहि उपमानु ॥९८॥

यथा कवित्त—

सरसिज सोहै मुख शिव से सिलौने कुच सुधासी सुहाई बानी लागति नवेली को ।
सोंधे सो सहज गंध सोने ते सुरंग तनु दामिनी तेदूनी दुति दाँतनि अकेली को ।

बामवीरा बारहार बरनै न बनि आवै कैसे करि कही जात कीरति
सुकेली की ।
चमक अंध्यारी मांझ होति है उज्यारी चारु चहूँ चरचत चाँदनी
चंदेली की ॥९९॥

अनन्वैय–दोहा

एकहि की जो कीजिये उपमित अरु उपमान ।
ताहि अनन्वैय कहत हैं कवि भूषण कवि जान ॥१००॥

यथा— पतित उधारन, भीतभय भंजन, दीनदयाल ।
जगत भरन पोषन करन तुम से तुम गोपाल ॥१०१॥

स्मरण अलंकार--दोहा

कछू बात अवलोकि कै वा सम की सुधि होय ।
अलंकार कविवर कहत स्मरण कहिये सोइ ॥१०२॥

यथा— चक्रवाक जुग नलिन लखि अरु भुवंग लषि काल ।
तिय कुच, बैनी, नैन की सुधि आवत तिहिकाल ॥१०३॥

यथा कवित्त

कुरंग तजैं तकि नैननिको. कटि देखिकै सिंहिनि सिंहनि यांते ।
चकवा जुग के सुत जेते तहाँ मग में जे हुते कहूँ कुंजर माते ।
कपोत औ कोकिल कंठ ते छाँड़ि सुआइ गये फिरि कै पिउ राते ।
तोतनि की सुधि आवत जो जियतो तो कहूँ ए शिकार न जाते । ॥१०४॥

दोहा— विषम देखे हू ते जु सुधि होइ हिये करि फंद ।
स्मरण अलंकारहि कहत तहाँ राघवानंद ॥१०५॥

यथा— मोर पखान के मौर गुहे घुघुची हरवा लषिएलषि माखन ।
वेनु विखान बनी बनमाल विलोकत ही जमलार्जुन साखन ।

गाइन को गिरि गोधन को जमुना तट कुंज निहारत आ खन।
मोहन ही मुरलीधर की सुधि आवत नन्द यशोदहि
ताखन ॥१०६॥

अथ भ्रान्तिमान अलंकार दोहा—

आन बात में वास रस आन बात भ्रम होइ।
भ्रान्तिमान सोई कहत कवि भूषण सब कोइ ॥१०७॥

अथ मम रस प्रकाशे यथा

कवित्त

मैंन बस कान्ह मन बसी तरुनी की तरुनाई आनिकाई को कारण
करत हैं।
बैठे चित्रसारी मन मोहिनी की मूरति सुउन अवरेखि देखि औचक
डरत हैं।
दौरि सौंहैं आइ कोरि कोरि सौंहें खाइ जोरि जोरि कै बनाय बातैं
धीरज धरत हैं।
जान अनबोली मुरलीधर मनाइबे को बार बार पूतरी के पायन परत
हैं ॥१०८॥

यथा— कुंज गलीन में साथ अलीन के खेलत कामिनी जाय परी।
हरि ऐसे में आइ बराय कै दीठि सु एक लता घर माह धरी।
तहँ जोर छुड़ैबे को केतो करो रही रोवत झांपति कंप भरी।
सुनि कै धुनि आनि जुरी जुवती कहि काय लिया मह बोलि
खरी ॥१०९॥

अथ संशय दोहा—

यह धौं यह की आहि यह समता ते जहँ होइ।
आशंका व भ्रान्ति की संशय कहियै सोइ ॥११०॥

कवित्त—

बोल्यो गुपालहिं कंस इहै सुनतैं बतियां छतिया अनिशाली।
चली चलिवे की चहु दिशि चौन हरी हू करी अति आपु उताली।
जो लों हों आऊरी लाज गमाइ कैं बारथ को पथ रोकन आली।
कहा करी अक्रूर के साथ हहा चलि लीशौ गये बरते घन
माली ॥१११॥

अथ तुल्य योगिता दोहा--

एकै गुन करतूति करि कीजे जहँ सम जोत।
स्तुति निंदा कारणौं तुल्य जोगिता तौन ॥११२॥

यथा— खल संगति चल दल चमक चपला की मन पौन।
कवि भूषण इमि कहत हैं घने रहें थिर तौन ॥११३॥

अथ आवृत दीपक दोहा—

जे ठहि पद सों सब कवित अर्थहि संगति होइ।
कवि भूषण इमि कहत हैं दीपक कहियै सोइ ॥११४॥

यथा— संजोगिन कुमुदिननिके अरु चकोर आनन्द।
कवि भूषण अति करतु है उदित अमीकर चन्द ॥११५॥
बार बार जो कवित में दीपक को पद ठान।
ताहि कहत आवृत्ति सों दीपक सुकवि सुजान ॥११६॥

यथा-सवैया—

सोहत भालमें बेंदी जराइ की सोहती कानन बीर सों हाई।
सोहति बेसर नासिकामें मुकता मिलि सोहति ओठ ललाई।
सोहति कंठ श्री अंगिया उर सोहति है कर भूषण ताई।
सोहति चूनरि सोहति जे हरि सोहत है तन में तरुनाई ॥११७॥

प्रति वस्तूपमा दोहा—

जितहि बात अरु बात सों सम प्रतीत अति होइ।
समता वाचक पदनि बिन प्रतिवस्तूपम सोइ ॥११८॥
यथा— तीर वन किरन-पसार सों रवि नास्यो अधिकार।
बान जाल सों राम रन नासे असुर अपार ॥११९॥

अथ दृष्टान्त दोहा—

जितहि बिम्ब प्रति बिम्ब गति कवि भूषण निजुहोइ।
कवित माँझ हू जानिये दृष्टान्ता पं सोइ ॥१२०॥
यथा— जु पै जप्यौ हरि नाम तौ मिटै पाप तन काल।
जो दिनमणि प्रगटै तुतौ दूरि भये तम जाल ॥१२१॥

अथ निदर्शन दोहा—

एक अर्थ की सरस जहँ अर्थ दूसरो ठानु।
कवि भूषण कहि कवित में तहाँ निदर्शन जानु ॥१२२॥
यथा— जुपै राधिका रोषु कै हरि सौं ठानै मान।
गहै कराई किरनि में तौ विधु सुधा निधान ॥१२३॥

अथ व्यतिरेकालंकार

अधिकाई उपमान ते उपमित में जो ठानि।
कवि भूषण कह कवित में तहँ वितरेकहि भानि ॥१२४॥

यथा कवित्त—

सुन्दरि की मुख की उपमा शशि पूरन पै सुकलंकित आली।
लोचन लोल विसाल बने सम कोलनिपै इन पंकज नाली।
पीन पयोधर सोहति ज्यों गिरि पै गिरि आपु भयानक भाली।
बोली बनी सम कोकिल की पै रसालि की मंजरी चाखि रसाली ॥१२५॥

यथा राजा देवीशाह नोक्तम्—

चंपक गुराई मंद चंद हरवाई भई चंदन चुरवाई रही सकै कौन समकै।
करर औ कुरंग कीर कोकिला कपूत कुल कामिनी कहू नवै जो जोर जोर कुमकै
अधर ते अधजोति मानिक की प्यारी पिया दशन ते हीरा हीन देखि कै फहमुकै।
देखिहै न सुनी गई ए नहीं कहूँ भई जैसे दुति दई दई दामिनी ज्यों दमकै ॥१२६॥

अथ सहोक्ति दोहा—

कारज कारण सहित जहँ कहिये जुक्ति संमेत।
यहै सहोक्ती है कही कवि भूषण कर हेत ॥१२७॥

यथा कवित्त—

विरहा विकल वनिताहि एक एक संग रैनु दिनु बार बार जहाँ तहाँ धायो है।
तन मन सुख के समूहन सहित चलि चहूँ ओर अति ही उनीनि कर आयो है।
कहें कवि भूषण वियोगिन के सोच साथ मही में सपूरन के आनि दुख ठायो है।
विरहिन नैन नीर धारन समीप घन पावस में उमड़िघुमड़ि झर लायो है ॥१२८॥

अथ विनोक्ति—

कहिये जाकी हीनता कहूँ बिना कर ठान।
अलंकार कवि भूषणहि कह्यो विनोक्ति हि जान ॥१२९॥

यथा सवैया—

खंजन से चख अंजन अंजित रंजित काम कलानि बसी की।
गोल कपोल अतोल अली मुख बोलते नील है खानि अमीकी।
उभे उरोज दिये दुति देह की रूप गों तू रति कीन्ही रती की।
मान की ठानि अजान ठई अब तू बिन नाह न लागत नीकी ॥१३०॥

यथा दोहा—

कहा तिया बिन यौवन हि कहा दिया बिन बाति।
कहा बिया बिन मालती कहा पिया बिन राति ॥१३१॥

यथा देवीशाह—

चंदन पंक में बैठी रहै नित अंग कपूर की मींड़ि लगावै।
बैहर बीजन राखि अंध्यारी में दाह सी घोसु में चेनु जनावै।
पंकनि जंघनि लीनो लपेट पै भार कै मारे कछू नहि भावै।
पावसु पानई बासु से बासई नाह बिना निसि नींद न आवै ॥१३२॥

अथ समासोक्ति दोहा—

प्रगट अर्थ उत आप उर, सुनता समुझै और।
ताहि समासोक्ती कहत महा सुजनता ठौर ॥१३३॥

यथा— गुंजति है अलि पुंजनि पुंजनि कुंजनि कुंजनि केलि ठनी है।
कोकिल कूक कपोत कोलाहल कोकिन कोकिन की कमनी है।
फूलि रही जमुना जल कूल अतूल अली बन राइ घनी है।
सो चलि कै लखियै लहिये सुख सुन्दरि फूल सुगंध सनी
है ॥१३४॥

अथ श्लेष दोहा—

एक भाँति के पदन जहँ उपजत अर्थ दुतीन।
ताहि कहत श्लेष है कवि भूषण बुत बीनि ॥१३५॥

यथा — रागी मंडल जासु है उदित कलानि समेत ।
राजा इमि कोमल करनि सब को ह्यौ हरि लेत ।।१३६।।

अथ अप्रस्तुत प्रशंसा

अनुवांछित बरनन सोई अनुगत बरनत होइ ।
अप्रस्तुत परसंस सो कहत कवीश्वर कोइ ।।१३७।।

यथा— जीवन सो जगमग रहे दिन दिन परम प्रगास ।
जगत बड़ाई है लही कमलनि कमला बास ।।१३८।।

अथ अर्थान्तरन्यास

एक अर्थ को मिलितो दूसर अर्थ जु ठानि ।
वि अर्थान्तर न्यासहि कहि कवि भूषरण जिय जानि ।।१३९।।

यथा— मलय अनिल ह्वै त्रिविध जग सकल जननि सुख देत ।
ज्यों त्यों है दक्षन है पुरुष करत सबनि को हेत ।।१४०।।

यथा देवीशाहि—

हरि बरनन चितु लगत नहिं यद्यपि लावत साधु ।
चपलनि को है सहज यह थिर न होत पल आधु ।।१४१।।

अथ विकस्वर दोहा—

प्रथमहि ठान विशेष जह पुनि साधारण ठानु ।
पुनि विशेष ही ठानिये तहाँ विगस्वर जानु ।।१४२।।

यथा— पारावार अपार सों लाधि गये हनुमान ।
अगम सपूतन के कहा लखि जैसे पवमान ।।१४३।।

अथ पर्जाजोक्ति—

बिनु भाषे वांछित अरथु सिद्ध को आन विधान ।
भली भाँति सो कीजिये परजाजोक्तिहि जान । ।।१४४।।

यथा सवैया—

शीतल मंद सुगंध समीर बहै उमहै मन मेघ न टाऊँ।
कोकलि बोलि कलोलनि बोलनि आमके बौरनि चाख अगाऊँ।
गुंजति हैं अलि पुंजनि पुंजनि फूलि रही है लवंग लताऊँ।
खेलि अली मुरलीधर सों मिलिपावन हों चलियां नलिआऊँ ॥१४५॥

अथ व्याजस्तुति दोहा—

कीजै निन्दा पै जहाँ बहुत बड़ाई होइ।
करत बड़ाई निन्दई जित व्याज स्तुति सोइ ॥१४६॥

निन्दा ते बड़ाई—

यथा सवैया—

चोर चमार चहार बड़े बट पार अपार जे पाप हड़ाई।
खात हलाहल हालहि पीवत बांमन कंचन लेत छड़ाई।
तेजु मरे मग ऊसर में अन जानत रावरो नामु लड़ाई।
देत तिन्हें बैकुण्ठ बसेरो कहौ हरि जू यह कौन बड़ाई ॥१४७॥

बड़ाई ते निन्दा—

कहत बड़ाई कान्ह की देव करत कल गान।
प्रमदा मारी पूतना करि वाको पय पान ॥१४८॥

अथ आक्षेप

कह्यो जो कछु तोकों करी करि विचारु प्रतिखेद जही पै।
कवि भूषन मनि जानिये अलंकार आछेप जही पै ॥१४९॥

यथा— कीजो आइ सहाइ चलि मीत परो दुख दंद।
रहौ कि तुमहू सबहि कौ है सहाय नदनंद ॥१४९॥
कही सिखायन प्रगट तहँ प्रगटनि खेद न होइ।
कवि भूषण कह कवित में गूढ़ छेपक सोइ ॥१५०॥

यथा सवैया—

श्रोरि खरे मटुकी टकरोरि कै माखनु दोरि अजोरि कै लीजै।
आपु न खाइ खवाइ कै औरनि कोरनि कै कपि को पुनि दीजै।
भावनि नीति अनीति करी नित ही नित मेक न काहू पतीजै।
और कहा कहिए मुरलीधर ठौर कहूं बसिबे कहं कीजै ॥१५१॥

अथ विरोध दोहा---

निज गुन ते विपरीत गुन जाको जहाँ जुठानि।
कवि भूषण कहि कवित में तहाँ विरोधै जानि ॥१५२॥

यथा सवैया—

शीतल मंद सुगंध समीर शरीर सतावत ताप तये हैं।
सारद चंद मयूख पियूख ते पावक झार लपेटि लये हैं।
का कहिये मुरली धरयो जब ते मधुरापुर दूरि गये हैं।
ठौरहु ते सब जे सुख के अब ते सबई दुखदानि भये हैं ॥१५३॥

अथ विरोधाभास—

जित श्लेषहि ते कवित होइ विरोधाभास।
कवि भूषण जिय जानिये तहाँ विरोध प्रभास ॥१५४॥

यथा — कला मिलित सब को सुखी करै करनि तम अन्त।
देवनि कीजै छीजनो दोषाकर गुनवन्त ॥१५५॥

अथ असंभव दोहा---

भये कार्जहु के जहाँ असम्भवित मनुठानु।
कवि भूषण कहु कवित में तहाँ असंभव मानु ॥१५६॥

अथ एकावली दोहा—

——— ————————————— सो पोखु।
ताहि कहो एकावली अलंकार करि तोषु ॥१५७॥

यथा सवैया—

नीरस राज सिंगारु सिंगारि सजो युवती बनितान सो ज्वै।
बनिता सोई कुंदन से तनु जो तनु सोई रह्यो जित जोवन ज्वै।
जोवन जो चतुराई चुर्स्यो चतुराई कही कल बोलन छ्वै।
कल बानी सोई रस बानी जोई रस सों जुरि है तिय प्यौवस
ह्वै ॥१५८॥

अथ मालादीपक—

पूरब पूरब पद जहाँ परे परे जुत होइ।
एकै पद मिलि अर्थु सबु मालादीपक सोइ ॥१५९॥

यथा— कामु कमानु कमान सरु सरहु लह्यो हरिपासु।
हरि बनिता बनिता सुरत सुरतहु केलि विलास ॥१६०॥

अथ सार दोहा—

आगे आगे ठानिये बहुत बड़ाई जासु।
पद समूह सो चित्त में सार नाम कहु तासु ॥१६१

यथा कवित्त—

जीवन में जन को जनम सारु जानयति जननि में सारु ए कुलीन
अवतारु हैं।
कुलि नाई सारु विद्या विविध विचारु पै विचारु हू में सारु रुचि रुचित
अचारु है।
कहैं कवि भूषण अचारु हू में सार मन संजुत सकल वश इन्द्रिन को
जारु है।
ताहू माँहि तप सारु तपहू में जप सारु जपहू एक हरि सुमिरन सारु
है ॥१६२॥

अथ उदारसार—

न्यारो न्यारो गुन जहाँ, एकै करिकै ठानु ।
तहँ उदार सारहि कहत, कवि भूषण जनु जानु ।।१६३।।

यथा— अति ही मधुर कवित्त रस मधुर सुधा निधि अंग ।
ताहू ताहू ते मधुर तरुनी अधर सुरंग ।।१६४।।

अथ यथा संख्य—

क्रम ही ते पद ठानि कै, अर्थ कि संगति होइ ।
क्रम करि ठाने पदनि सों, यथा संख्य कहि सोइ ।।१६५।।

यथा— बेनी आननि लोचननि, नासिक अधर सरूप ।
अहि शशि मृग शुक बिम्बई, जीते अतिहि अनूप ।।१६६।।

यथा राजा देवीशाहि—

देह की निकाई जाकी देवहू न कह, सकै भ्रमत भ्रमर बहु झरोखा महल के ।
हेम हीरा हरि हाथी देह दंत कटि मति ताके तनु ताके अति लागत सहल के ।
चारों ओर तनु ताके तनु को परसु चाहे वश करैं जाड़े दिन होंहि जो कहल के ।
खई उठै जहाँ तहाँ श्रवन चलायो चहै देखौ चहै दृग दैके चशमा पहल के ।।१६७।।

अथ पर्याय

एक बात बहु ठौर ठैं, बहुल एक थल ठानि ।
अलंकार पर्याय इमि, लेस जानि मन आनि ।।१६८।।

यथा सवैया —

प्रात उठी अलसात एकन्त दिये बिन अंचल ही अँगराई ।
ओट खरे तरुनी निरखी पहिले ही पिया मुख दीठि लुभाई ।
आनन नैन कपोल पयोधर ते त्रिवली नधि नाभि लौं आई ।
देखत ही चख रीझि रहे रिकहा न हिये अंग अंगु निकाई ॥१६९॥

बहुत बातें एक ठौर यथा—

जा उर में हरि हेत करि, धरयो राधिका हार ।
तुव वियोग तिल ही धरे, अगनित दुःख अपार ॥१७०॥

यथा— पीन पयोधर परसु दै, तरुनि हियौ हरलीन ।
मैन तपत हरि हू लही, तनु नीको मनु दीन्ह ॥१७१॥

श्री राजा देवीशाहि—

शैशवता सुविधा भई, जोबन आँवनि कौंखि ।
आँखनि की गति पगलई, पायन की गति आँखि ॥१७२॥

अथ परि संखा दोहा—

एकु ते एकु जु बरजि सो, अनत एक में ठानि ।
बूझे की बिन बूझि हू, परि संख्या सो जानु ॥१७३॥
सुतौ बरंजवे भाँति द्वै, कहत जान मनि जान ।
एक शब्द ते होत इकु, अर्थ हिते करि ठान ॥१७४॥

बूझे ते बरजिवो शब्द ते गद्य यथा-सवैया—

छिद्र मंडन है जु कहा जग में कल कीरति नाहिन मानिक मोती ।
सखी अत्र कहारन में नहि है किरवान अहै रज रोती ।
करिवे जु कहा करतूति भली करिए न सुजात अकीरति होती ।
नैन कहा मति पैनी न नैन जो जानें विवेक बड़े बड़े गोती ॥१७५॥

बूझे बरजिबो अर्थ ते—

सोइबे को है कहो सतसंगति धेइबे को है कहो बनमाली।
साधन का मुकरी मन को अवराधन का मुकरी मन आली।
कीबे कहा कहि पुन्न नदी पै कहा कहि जानु मिटै तम जाली।
चालिऊ का हरि की चरचा परिपालिग्रका करुना परि पाली॥१७६॥

बिन बूझे बरजिबो शब्द ते यथा—

ध्यान करो हरि को सदा, नहि न धाम धन चीतु।
जान करो गुरु को कहो, नहि गुमान करि मीतु॥१७७॥

बिन बूझे बरजिबो अर्थ ते—

दोहा — दीबै ही के कारनै, कमला सों बहु रंगु।
आरत आरति हरन को, समरथ हरि को अंगु॥१७८॥
होत श्लेषहि ते इनहि, बहुत विचित्र विशेषु।
परि संख्या के भेद इमि, अनगन भाँतिन लेखु॥१७९॥

श्लेषते विचित्र विशेषु यथा—

जीति जगत जा नृपति के, परि पालन भव खंड।
जाके छत्रहि में रह्यो, सुबरन ही को दंड॥१८०॥

अथ विकल्प दोहा—

जै द्वै बातें तूल बल, तिन की होइ विरोध।
चतुराई जुत जित तितहिं, करि विकल्प को बोधु॥१८१॥
यथा — कै तो माथ नवाइये, कै कमान ही तानि।
कै अरि आपु सु कै धनषु, गुन को कानहि आन॥१८२॥

अथ समुच्चय—

बहुती बातन को जहाँ, एकहि सों संजोग ।
ताहि समुच्चय कहत हैं, कवि भूषण कवि लोग ॥१८३॥
प्रथम भलो विधि अन भलो, तीजो हिल मिल ठानि ।
तीनि भाँति संजोग इमि, कवि भूषण जिय जानि ॥१८४॥

भलो संजोग—

यथा—

साजि सेज सुथरी सुहाई रैनि आई जानि दीप दीपु सौरहो सिगारनि धरति है ।
काम केलि करिवे की कोरि करि हौसे हिये मग नैन दिये कहूं केहूँ ना टरति है ।
वागै वीरै बनिठनि उत बनमाली आवैं जौं लों तौलों तिय अति आरति करति है ।
चित्र अवरेखी देखी मूरति मनोज हरि मुरलीधर को आपु अंक में भरति है ॥१८५॥

यथा देवीशाहि—

गृह के नजीक जाइ डेरा कियो सुख पाइ सघन सुखन जहाँ फूले द्रुम ग्राम हैं ।
पति सुने आये मनो प्रान फेरि पाये नव सखिन सहित अति फूली सब वाम हैं ।
दुहुँ ओर रुचि जान मन मँह दाउ मान नेकहू न करी कानि साधे वान काम हैं ।
जोतिसी बतावैं प्रात जाइ कैसो अधरात चारि युग के समान भये चारि याम हैं ॥१८६॥

अन भलो संजोग यथा दोहा—

पर पोष्यो मधु पाइ कै, मात्यो महा मलीन।
कोकिल बोलि वियोग जन, करतु खिनहि खिन खीन ॥१८७॥

भलो अनभलो संजोग यथा—

शशि द्वीजो साधो दुखित, तिय तनु जोवन हीन।
गुनी अनादर खल महतु, अहो कहा विधि कीन ॥१८८॥

अथ समाधि दोहा—

कारज ठानतु दूसरो, हेतु होइ अनयास।
कवि समाधि वासों कहत, अलंकार परगास ॥१८९॥

यथा सवैया—

दीपक, वारि कै सेज सुधारि सिंगार समारि सुगंध लगायो।
जोबन सो उमगी अंगिया कर आरसि लै मुख देख सुहायो।
नील दुकूल बनो लंहगा धरि कंचन से तन में मन भायो।
बोली अली मुरलीधर बोलन को उत कोकिल बोल सुनायो ॥१९०॥

राजा देवी शाहि—

वेनी भुजंग लषे कटि सिंह सु पैने पयोधर दोऊ बनै।
तीक्षण उज्ज्वल वज्र समान ते पाँतिन सोहत दंत घनै।
करीन की चालि कहा कहो ऐसी है मैं नहीं देखै गए ही बनै।
तीर से तेरे ए नैन नवेली इतै पर ए सब मोहै मनै ॥१९१॥

अथ प्रत्यनीक—

बली शत्रु सों हारि कै, वाको समसरि जोइ।
प्रच्छम अरिकरि तासु जय, प्रत्यनीक कहि सोइ ॥१९२॥

यथा सवैया—

फूल मिलै मखतूल प्रतूलनि बेनी गुही बनिता की विलोकै।
हारि कलापी कलापनि डारि कै वा अनुहारि भुजंगनि रोकै।
छोड़ि विहार निहारति ही करि हाँ मन ही मन के हरि सोकै।
तो कुंच कुंभनि की सम देखि विदारत हैं इम कुंभन जो कै ॥१६३॥

अथ प्रतीप दोहा—

उपमित ते उपमान की, कही हीनता होइ।
कवि भूषन कह कवित में, तहँ प्रतीप है सोइ ॥१६४॥

यथा सवैया—

जो तुव आनन आनन्द की निधि तौरि छपाकर भो छवि रीतो।
जो तुव लोचन लोल विशाल तो मीलनि कौलनि ते छवि जीतो।
जो तुव भौंह कटाक्ष रचे अब काम कमान को बान वितीतो।
जो तरुनी तव जोति जगै तन तो अलि कुंदन को अब बीतो ॥१६५॥

अथ उल्लास दोहा—

आन बड़ाई ते जहाँ, आनहि दीजै दोषु।
अलंकार उल्लास तहँ, कहै गुनी कर तोषु ॥१६६॥

यथा सवैया—

मैन से मोहन मोहित है मुसकाइ अली जब ते तुम हेरो।
ता दिन ते तुम्र भौन चहूँ दिसि वारहि वार करे हरि फेरो।
वे सरि के मनते हूँ रसीली मिलै जुन आज कह्यो करु मेरो।
एरी सुहागिनि भागवती सुनियाते अभागु कहा कहि तेरो ॥१६७॥

यथा दोहा—

गुन गुंफित जन संत जे, महादानि सनमानि।
तिनहि न सेवै तू सिरी, निज अभाग सो मानि ॥१६८॥

अथ तद्गुन दोहा—

आनहि के संजोगते जो गुन भूलो होइ।
आनहि ते सो गुनु जहिन तद्गुन कहिये सोइ ॥१९९॥

यथा सवैया —

पहिले बिरहागिनि ब्यापि भरी गुन देह की दीपति दाह लई।
अनु कंचन की पिरली हौ थिरचि मुकांचहि की मनु मैल टई।
यह रूपक ही यह रूपरती अलि बातहि सों कहो कैसी भई।
परदेश तें पीतम मोनहि ह्याय कै फेरिकै आनु निकाई दई ॥२००॥

यथा दोहा —

हर कंठहु छबि श्यामता भई शेष के अंग।
सुनहु सुरस ही सुरि गई लागे गंग तरंग ॥२०१॥

अथ पूर्व रूपता—

मिटी बात जो फेरिके वैसी ही फिर होइ।
तामों पूरबरूपता कवि भूषण कह कोइ ॥२०२॥

यथा सवैया —

आजु गली अधरात समय अथयें राशि राति भई अंधियारी।
बोलि कह्यो मुरलीधर मोहि बुलावन को अलि प्रान पियारी।
याके हो जाइ लगाइ मृगमद नील दुकूल बनी अंगियारी।
बेनु बनाइहौ ह्याइ चली उमही तरुनी मुख की उजियारी ॥२०३॥

अथ अतद्गुण—दोहा—

संयोग हुते आन को गनन् आन मैं होइ।
कबि भूषण कहि कवित में कहैं अतद्गुण सोइ ॥२०४॥

यथा सवैया —

काननि बीरें बनाइ धरी जिन में तिन कुंडल को पहिराई।
बारनि बेनी बनाय गुही जिनकी तिन मांह जटा ठहराई।

जो तो कह्यो मुरलीधर गुन तो भलीना नीतरु ह्यां ग्रहिराई ।
नागर लोगनि सों कियो संग तऊ न गई हरि की ग्रहिराई ।।२०६।।

अथ अनगुन दोहा—

ग्रौर कि संगति ते जहाँ निज गुन की अधिकाइ ।
कवि भूषण कवि में मते कहि अनगुन मन भाइ ।

यथा—

बैठे संकेत सुहावन मे मुरलीधर के मन में इमि ग्राई ।
राधिका सों मुसकाइ कही पटको पलटो करि वेपु बनाई ।
नील दुकूल धरयो पिय प्रान प्रिया तन प्रीति पितम्बर भाई ।
श्यामलता उनके उमही इन के उम ही ग्रतिगात गुराई ।।२०७।।

अथ अवज्ञा दोहा—

गुन ग्रौगुन की बात जो समरथ नेकु न होइ ।
कवि भूषण कवि के मते कही ग्रवज्ञा सोइ ।।२०८।।

यथा सवैया —

जो सब लोभ मिटो जन के मन तौ कितहूं कछु पायो न पायो ।
जो तपु के खीन भूख लई जनतौ ग्रब नाजहि खायो न खायो ।
जो मुरलीधर को गुन गान कियो तब वेदन गायो न गायो ।
जो हरि को चरनोदक शीश चढ़ायो तौ तीरथ न्हायो न न्हायो ।।२०९।।

यथा दोहा—

दिन मनि की घटती कहा गहत जो कुमुद कलानि ।
कमल मलीन तो होत तौं कहा सुधाकर हानि ।।२१०।।

अथ प्रश्नोत्तर—

बूझे ते उत्तर प्रगट की ग्रनमूदो होइ ।
कवि भूषण कवि के मते कहि प्रश्नोत्तर सोइ ।।२११।।

प्रकट उत्तर यथा सवैया—

री तिय, क्यों पिय, तू तजि मान, कहा मैं कियो करि मान नवीनो।
मो हिय में दुख दोषु तिहारो कहा नव दोषु अभागहि दीनो।
काहे को लेति हिये भर की अब काके हों आगे हियो भरि लीनो।
मेरे, तिहारी कही हम को, बनिता, नहीं याही ते रोदन कीनो ॥२१२॥

गूढो उत्तर यथा दोहा —

सपने में परदेश प्यो गये गये दिन बीति।
तरुनि अकेली गेह में कैसी पथिक बसीति ॥२१३॥

अथ पिहित दोहा—

करतूतिहु अनुहारिते बात जान बारीक।
वाही भाँति जनाइये यहै पिहित की लीक ॥२१४॥

करतूति ते यथा—

जमुना के कूल फूले बरन बरन फूल हरे वहै सोरों पौन जात महकाइ के।
सघन सुहावने निकुंज गुंजै अलि पुंज देत मधु कोकिल सों सुरनि लड़ाइ कै।
चलो उत ग्वालिनसों कहै मुरलीधर पिया त्यों चितै लीनी उर लकुट लगाइ के।
प्यारी गुन नारिन में अंचल दै ओट हंसी कंचन की बीर नील चीर में छपाइ कै ॥२१५॥

राजा देवीशाहि—

नागरि नैनन देख न देइ पिया तब एक सुबुद्धि उपाई।
आनन ओर ते आरसि आन कै पीछे ते आपुन ताहि दिखाई।

नैनन हू के भये इक ठौर यहै छवि क्यों हूं कही नहि जाई।
ऊपर भाऊ भयो यहि भाँति हिये महँ कोप हिये न समाई ॥२१६॥

अनुहारित यथा—

अलसात उठी अंगरात है राधिका प्रात समय रस अंग भरो।
अंगिया दर की बलिया कर की उर हार अनेक की भांति अरो।
सखि देखि हंसी रति में बिपरीत जनावन को कछु भेद करो।
कर दै मुरलीधर की मुरली तिय के सिर मोर किरीट धरो ॥२१७॥

अथ ब्याजोक्ति दोहा—

प्रकट भई जोइ बात सोइ छल कर तुरत छपाउ।
काहू के संकोच ते तहँ ब्याजोक्तिहि गाउ ॥२१८॥

यथा कवित्त—

परवत पति पशुपति को बुलाइ ब्याहि दान देइ गांठ जोरि पारवती धन की।
ब्यापिगो अनंग पै अनंग अरि अंग अंग भई नव रंग रीति रोम हरपन की।

कवित्त—

गोपिन के संग रास रचत गोविन्द देखि देव सुर विविध विमान छवि छई है।
बिधि बिहंसत हर हंसत निहारि हरि सहस नयन हूकी बुधि सुधि गई है।
कहै कवि भूषण अंत को अनन्त पावै कर पशु जानु उर जहाँ केलि ठई है।
नागपुर नरपुर सुरपुर हूते बड़ी नंद जसुमति के अजिर भूमि भई है ॥२२०॥

अथ अत्युक्ति दोहा—

अति उदारता सूरता अतिरिज झूठे ठानि ।
बरनन कीजे कवित्त में तहँ अत्युक्ति बखानि ॥२२१॥

यथा कवित्त

इंदिरा के मंदिर में इन्दीवर नैनी आपु अरध खरब कीनी दरब की ढेरी है ।
रूपे को पहार और कनक गिरि सिगरे रतन रत्नाकर के समेटि सकेरी है ।
कहै कवि भूषन न नेसकु नगीर हेरि दुखित सुदामा की हो विपति निवेरी है ।
द्वार केसु महादानि दीन द्विजराज ही के देवे कहूँ आठौ सिद्धि नवो निद्धि टेरी है ॥२२२॥

अथ रसवता दोहा—

जहँ प्रधान रस एक है अप्रधान रस और ।
कवि भूषण कवितो मतो रसवत कहिता ठौर ॥२२३॥

यथा कवित्त—

मैन मय माती मन मोहिनी मंदिर माँहि बैठि मुरलीधर के ध्यान को करति है ।
साखन में लन में है गई तरुनी सी और तरुनिन अवलोकि आंक में भरति है ।
कानन कुंडल धरि कंठ बन माल धरि कटि पीत पटु धरि मुकुट धरति है । ॥२२३॥
ग्वालनि टेरति पशु फेरति गायन टेरि बनितनि घेरि वृन्दावन को ढरति है ॥२२४॥

यह कवित्त शृंगार अप्रधान दै हास्यरसु प्रधान है ।

अथ प्रेय तथा उर्जस्व दोहा—

परम प्रेम बरनन जहां प्रेय कहावै सोइ।
अति प्रचंड बरनन जहाँ उरजस्व इमि होइ ॥२२५॥

प्रेय यथा कवित्त—

वै तो हैं रसिक रसरीति नीके जानति हैं नील कौल हू ते कहूँ मोरि टरि जाइगो।
और नायिका के पास गए तो भयोरी कहा मेरो रस सरस पुनीन ढरि जाइगो।
कहै कवि भूपन पलक प्रान पति बिनु अरी मोय कौन भाँति धीर धरि जाइगो।
तेरे हू कहत मेरो हिया हहरत मन मोहन सों मोसों कैसे मानु करो जाइगो ॥२२६॥

राजा देवीशाहि—

आँखें मूंदे देखौ जाहि खुले खरे आगे आहि चहूँ ओर चारु छवि चखनि हीं दरसों।
अध ऊँचे आधीरात साँझ दुपहर प्रात मन में उठे तरंग के हू चाहि परसों।
मेखला मचागि बाँध श्रुति मुद्रा भोरी कांध मिले नहीं ऐसी तिय माँगे हू अमरसों।
मन ही में मनु पाय पाय उरझाय हिये हियो लाइ राखों अधर अधर सों ॥२२७॥

ऊरजस्व यथा—

बसनन लेत बरजत रज कहि हरि एक ही थपेर घरि चूनुकरि डार्यो है।
धरनी धरनु धर नाग को बिध्वंस करि रणवीर अडयो बड़ी बारनि बिडार्यो है।

कहै कवि भूषण उफोरि डारि हरषाय छल बल करि महा मालनि पछार्‌यो है।
सुमरि सुमरि वसुदेव देवकी को दुःख कान्ह धरि कंस को मरोरि मोरि मार्‌यो है ॥२२८॥

अथ समाहित दोहा--

भाव सात कहिये जहाँ कहि कवि भूषण ठानि।
तहाँ समाहित जानिये करत कवी सब आनि ॥२२९॥

यथा—

निज बल आयुध धरि धरि अरि जो कियो गुमान।
राम तेज ते ताहि की भई तडित की ठान ॥२३०॥
यह कवित्त गरब भाव की शान्ति है।

भाव उदाय यथा--

विरह छीन अति दीन मन विरहिनि व्याकुल बाल
औचक सुनि पिय आगमन बदल गई तिहि काल ॥२३१॥
यह कवित्त हर्ष भाव को उदय है।

भाव संधि यथा—

सुमिरि सुमिरि हरि रूप रस मधुर वचन मुसकानि।
उठि उठि फिरि चलि बैठई तिया मानि कुल कानि ॥२३२॥
यह कवित्त में औत्सुक और लज्जा के संधि है।

भाव सबलता यथा--

चलि चलि इत उत देख ही शशि उगयो अलिएहु।
भयो मैन पर चंड अब कैसे रहे सनेहु ॥२३३॥
यह कवित्त औत्सुक्य शंका विषाद मति त्रास वितरक इनकै सबलता है।

छंद – है सुद्धि एक प्रधानता संसृष्टि संकर जानु ।
है करत अब इन चारिहुके भेद को निरमानु ।
जो अलंकार कवित्त में यक सुद्धि सोइ मानु ।
द्वै अलंकार प्रधान एकै सेद एक प्रधानु ।
सम अलंकार द्विसे संसृष्टि ताहि बखानु ।
बहु अलंकारनु को जु एक थल भरन संकर मानु ।
जहं शब्द के अरु अर्थ के अलंकार द्विनि मिलि ठानु ।
संसृष्टि औ संसिष्ठता सो कहत सुकवि सुजानु ॥२३३॥
अलंकार जे है कहे तिन ते इन उत्पाति ।
अलंकारता है तहीं इनमें न्यारी भाँति ॥२३४॥
अलंकार जे है कहे तिनते आनो वानि ।
रचन कवित में आनई अलंकार तहँ जानि ॥२३६॥

यथा – तुअ कटि ते यह नारि को तनु अति ही पतरातु ।
तेरे कुच द्वै बीच में केहू नहीं समातु ॥२३७॥

यह कवित्त असम ही अलंकार जानिबो ।

दोहा— जैसे अगनित भाँति, के आभूषन अंग होत ।
अलंकार यों ही अगन, कवित में करत उदोत ॥२३८॥
जो समझा ऊहे धरे अलंकार सब झारि ।
तऊ भेद कछु है धरे ज्यों मानस अनुहारि ॥२३९॥

छंद—अलंकार पद जमक तीनि पुनरुक्ति भास पुनि ।
चित्र वक्रोक्ति त्रिविध प्रकार भाषा सम मनगुनि ।
उपमा आठहि भेद कहिअ रूपक षट भेदनि ।
परिनाम सो उल्लिखित अपन्हुति पाँच भेद ठानि उत्प्रेक्षा ।
त्रिविध स्मरण विधि भ्रांति मान संशय सहित ।
मिलित समन्वय उन्मीलतहि अनुमान सौं अनुकूल तिथि ॥२४०॥
अर्थापत्ति अरु काव्यलिंग परिकर जुत ।

अंकुर अक्रम अतिशयोक्ति भये पांच भेद नुत ।
संभावन प्रहर्ष विषादन तुल्य जोग्य तहि ।
दीपक विवि प्रति वस्तु उपम द्रष्टान्त निदरसहि ।
व्यतिरेक सहोक्ति विनोक्ति समासोक्ति सलेषहि जानि चित ।
अप्रस्तुत प्रसंस अर्थान्तर न्यास विकस्वर जान हित ।।२४१।।
पर्जायोक्ति व्याज स्तुति विवि आक्षेपहि विरोध विरोधा भास ।
असंभव अरु बिभावन विशेषोक्ति असंगति विषमसम ।
विचित्र अधिककरि । अन्योन्य विशेष विघात
कारनमाला धारि । एका वलि माला दीपकहि सार ।
उदारस्सार गनि । पुनि यथा संख्या पर याय बिन ।
परिवृत्ति औ परि संख्यतिनि ।।२४२।।
विकल्प निज मनि आनि समुच्चय तीनि भाँति करि ।
अरु समाधि प्रत्यनीक प्रतीप उल्लास सुकविधरि ।
तद्गुण पूरव रूप अतद्गुण अनुगुण जनि अ ।
जानि अवज्ञा प्रति उत्तर विवि पिहित विठानिअ ।
व्याजोक्ति स्वभावोक्ति अभावक भाविक छवि कहित ।
उदात अत्युक्ति रसवत सरस प्रेयऊ रजस्वरि सहित ।।२४३।।

दोहा—ठानि समाहित भाव को, उदय संधि सवलत्व ।
नर अस महिलों जानिये, अलंकार को तत्व ।।२४४।।
जैसे अगनित भाँति के, आभूषण अंग होत ।
अलंकार यों ही अंगन, भूषन करन उदोत ।।२४५।।
जो समता ऊहै धरै, अलंकार जे भ्कारि ।
तऊ भेद कछु है गहे, ज्यों मानस अनुहारि ।।२४६।।
इति श्री गहरेवार बुंदेलबंश वारिजविकासन मारतंड
राज लक्ष्मी रक्षण विचक्षण दो दंड महा वीराधि वीर
राजाधिराज श्री राजा देवीशाहि देव प्रोत्सहित

त्रिपाठी रामेश्वर आत्मज कवि भूषण मुरलीधर
विरचिते अलंकार प्रकाशे अलंकार निरूपनो
नाम पंचम उल्लासः ॥५॥

अथ रस निरूपण

तत्र रस लक्षण—

कवित्त—

मिलि कैं विभाव अनुभाव व्यभिचारी भाव सातिक भाव निकरि बहुलैं बढ़ायो है।
काव्य हू में नाटक हूमें नाचहू में नीकी भाँति अनुभयो थाई भाव रस पै कहायो है।
जाके उर आये सुध बुध न रहत कछू होति इमि आनन्द जननि मन भायो है।
मानहु तुषार घन सारु घोरि चंदन ग्रीषम ऋतु आनि अंगनि लगायो है। ॥२४७॥

अथ विभाव लक्षण—

रस विशेष उपजावहि, जेते कहे विभाव।
आलम्बन उद्दीपने ते, विभाव कवि गाव ॥२४८॥

अथ अनुभाव लक्षण—

रस उपजे ते होत जे, ते अनुभाव बखान।
कवि भूषण इमि कहत है, कटाक्षादि अनुमान ॥२४९॥

अथ व्यभिचारी भाव लक्षण—

है विभाव अनुभावई अगनित नव रस दीस।
थिर अरु चंचल होत हैं विभचारी तैंतीस ॥२५०॥

कवित्त—

निर्वेद ग्लानि संका असूयामद श्रम आलस्य दीनता चिंता मोहि धरि
ताई है ।

असमृति व्रीडा चपलता हर्ष आवेग जड़ता गरब विषाद औत्सुक नींद
गाई है ।

सुप्ति विबोध अमर्ष अवहित्य यारि उग्रता सुमति व्याधि उन्माद हाई है ।

मरनु तरास वितर्क व्यभिचारी भाव तैंतिस बखानत भरत रिषिराई
है ।।२५१।।

अथ सातिक भाव लक्षण दोहा-

स्तम्भ स्वेद रोमांच स्वर, भंग कंपु इमि गाव ।
विवर्णता आँसू प्रलाप, ए आठो सातिक भाव ।।२५२।।
आठो सातिक भाव एइ, नव रस माहि समान ।
अनुभावीन हिल मिलि रहे, न्यारे नहीं बखान ।।२५३।।

अथ थाई भाव लक्षण तथा रस तथा स्थान तथा रंग और उनके देवता-

कवित्त—

सिंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानक औबीभित्स अद्भुत शांति रस
ठनिकें ।

रति हास शोक कोप उत्साह भय विनि अतिरिजु समथाई भाव नव
रसनि के ।

स्याम सेत धूसर गुलाल गोरो कालो नीलो पीतु सुचि नोऊ रस रंग रहे
बनिकें ।

विष्णु औ प्रथम यम रुद्र इन्द्र काल महा काल गंधर्व ब्रह्म थान
देवतनिके ।।२५४।।

अथ शृंगार रस लक्षण–

रति परि पूरन कही है शृंगार रस सुनौ संजोग औ वियोग हू बखानिये।
नायक नायिका आलंबन विभाव पै उद्दीपन बसन्त आदि अगनित जानिये।
कहै कवि भूषण कटाक्ष मुसक्यानि सुखु पुलक पसेउ आदि अनुभाव ठानिये।
आरसु ईर्षा घिन इन्है बिन और सवै भरत के मते व्यभिचारी भाव मानिये ॥२५५॥

अथ संजोग शृंगार लक्षण—

दरस परस चुम्बन करत, आलिंगन ते चारु।
देखत उर आनन्द उमग, कहि संजोग शृंगारु ॥२५६॥

यथा कवित्त——

इंगुर से रंगि ओपि रचे बिधि कुंदन कुंभ मनो चित चोरैं।
कंचन के जल की सरसी बिलखैं चकई चकवा अंग मोरे।
काम के कंदुक पीन पयोधर यौवन के उमगे मन भोरे।
मोहि रहे मुरलीधर ह्वै बस ऐसे उरोज लखे उर गोरे ॥२५७॥

मम कृत रस प्रकाशे यथा–

मैन के माते नये तिय सो पिय आतुर ह्वै रति रीति संचारी।
टूटिगो हारु रोमावलि सो लगि नाभि में आनि अर्‌यो मुरवारी।
देखितितै अवली कवि भो मुरलीधर दीन्हीं यहै उपमारी।
गंग तरंग के संग सुकंज में देत अडावनो नागिन कारी ॥२५८॥

देवीशाहि यथा–

कबहू हंसति भहराति जाति सिसकति मूंदि के उखेले नैन छबि ते सुहाई है ॥२५८॥

बिथुरे बसन भुज भूषन उछूटे टूटे श्रम सेद सुगंध झकोरै बहुधाई है।
फरकत कुच अंग गरकत जान सबै पिय कानन में सुर नूपुर की छाई है।
मुक्ता के हार ते सकिल सुख दिग रहे पाँतिन तरैया मनो चन्द्र पास
आई है ॥२५६॥

अथ वियोग शृंगार यथा कवित्त–

अंजुलि को जलु जैसे जल बिनु मीन जैसे ऐसे मीन नैनी खीन खीन होति
जाति है।
पलिका में अवरेखि राखी है कनक पानी पूतरी सी पिय की न पलक
झपाति है।
कहै कवि मुरलीधर मुकुन्द अंग संग बिनु व्यापत अनंग अंग अंग
मुरझाति है।
सीरे उपचार ज्यों ज्यों कीजै पिय तन त्यों त्यों रति पति तपति अधिक
अधिकाति है ॥२६०॥

राजा देवीशाहि यथा–

कोयल के गान ठानु मौर झौर आम आन किंशुक पुहुप मानो तम्बू
आनि दीने हैं।
गुंजरत अलि पुंज बैठे मंजु मंजरीन शीतल सुगौनते सुगंध ताय लीने हैं।
पिय के मिलन बिन अजहूँ न मिले नैन उरके ते भूषण प्रसेद जल
भीने हैं।
भई बे सम्हार पंच बानम लागे बान कानन में काम कौन कौन काम
कीन्हें हैं ॥२६१॥

अथ हास्यरस के लक्षण कवित्त—

हास परिपूरनि कह्यौ जो हास्य रसु अवलम्बन विभाव विपरीत भाँति
जानिवो।

कहै कवि भूषण उद्दीपन विभाव इत नीति दरसनु बात उलटे बखानिबो।
आनन अधर पल लोचन सकोच अंग अंगनि को मोरि बोई अनुभाव ठानिबो।
अत्र हित्य आरसु ईर्षा नींद जागरन आदिक इतहि व्यभिचारी भाव मानिबो ॥२६२॥
अहो मधुकर मधु मीत मोहन जू मधुबन जाय कहो कहा कहा कीनो है।
सुनियत कूबरी सुरूपि देखि रीझि रहे आपु तिरभंगी संगु छवि सों नवीनो है।
कहैं कवि भूषण छपाई चतुराई यहाँ उत प्रगटाई है चतुर जस लीन्हो है।
हंसि हंसि बिहसि बिहसि कहैं ग्वारिनियों जोगु हमको औ भोगु कुबजा को दीन्हों है।
दोहा—बारह भेदन हास्य रसु, भरथहि करो बखानि।
मम कृत रस परगास ते, लेत जानि मनि जान ॥२६४॥
इससे विदित होता है कि भूषन ने एक ग्रन्थ रस प्रकाश भी रचा है।

अथ करुना रस को लक्षण—

कवित्त—
शोक परिपूरन कह्यो करुनारसु अवलम्बन विभाव हितु हानि आदि जानिरे।
कहै कवि भूषण उद्दीपन विभावहित कीजै हित बातें तिन्हें आदिक बखानिरे।
मूरछा विलाप देव निंदा मुख शोक कंपु रोदन पतन आदि अनुभाव मानि रे।
मोहु निर्बेद जड़ता विषाद उन्माद चिंता सुमिरनु आदि व्यभिचारी ठानिरे ॥२६५॥

यथा—
जबते सिधाये मधुपुरी को कन्हाई माई तबते लिखति दिनु दिनु लेखि खिलेकै ।
ग्वाल बोलि बोलि बूझै कित छोड़ आये कान्ह कान्ह कहि टेरत निकुंज पेखि पेखि कै ।
कहै कवि भूषण सुमिरि कछु बार बार दोषु देति देवनि तमकि तेखि तेखि कै ।
मूरछति मोहति रुदनु करै धुकि परै मोर पंख मुरली मुकुट देखि देखि कै ।

दोहा—करुना रस में शोक पै, थाई भाव बखानि ।
रति बियोग शृंगार में, ताते भेदहि जानि ॥२६७॥

अथ रौद्र रस को लक्षण—

क्रोध परिपूरन रौद्र रस जानु अवलंबन विभाव अरि आदिक बखानिले ।
आयुध सकल जूझ हेतु निंदा राग रुना धौंसा की धुकार आदि उद्दीपन मानिले ।
भ्रकुटी कुटिल दांत पीसि बोउ फोरि आपु की बड़ाई आदि अनुभाव ठानिले ।
कहै कवि भूषण आवेग सुमिरन मोहु अनरखु उग्रतादि व्यभिचारी जानिले ।

यथा—
पांडव महीप मख मंडप अखंड नव खंड भूप तिनकी प्रचंड भार भई है ।
पूजित भूपालसों गुपाल देखि शिशुपाल कोटिक ही कुवतैं कितो की रिस ठई है ।
कवि भूषण चढ़ाई भौंह कोह भरी चक्रपानि हूकी डीठि चक्रपास गई है ।
शत्रु शीश काट रही वैरिन उपाट महि मंडल पै पाटि छांटि छांटि बलि दई है ।

अथ वीर रस को लक्षण—

उत्साह पूरन बखानि वीर रस अवलम्बन विभाव परभाव आदि
जानिये ।
कहै कवि भूषण उदीपन विभाव इत वीरन की बातें जीति बातें आदि
मानिए ।
धीरज वरिज सूरता हंसी पराक्रम अरि वर निन्दा आदि अनुभाव ठानिए ।
अमरषु हरषु गरबु मद वितरकु ईर्षा आवेग आदि व्यभिचारी जानिए
॥२७०॥

छंद—बखान ही कवीश तीनि भाँति वीर ठानिए ।
सो युद्ध वीर दान वीर दयावीर मानिए ॥२७१॥

अथ युद्ध वीर यथा—

आगे उतुंग मतंग बली उलदें मदमेह के मेह लपे हैं ।
बाजे निशान दिशान दलै धरनी धरनीधर उर धसे हैं ।
अवनिसों उमड़्यौ घुमड्यौ सुमधोरनु जे सुर मारि मसे हैं ।
देखि दशाननु को दल दीरधुवीर महा रघुवीर हसे हैं ॥२७२॥

अथ दानवीर यथा—

बाबन सरूपधर पतित पावन आपु आइ दनुजेश द्वारे कीनो वेद
गानु है ।
कहैं कवि भूषण बुलाइ कै बैठ कि दीनो सबु मानि लीनो बलि कीनो
सन मानु है ।
कहौं कहा लैहो यहै सुनिईश माँगी तीनि पैग पुहुमी सुनत बोल्यौ
महा जानु है ।
भीजैं सारी बसुभरी वसुधा हौ देत देवतीन पग भूमि कहा देहौं कौनु
दानु है ।

अथ दयावीर यथा सवैया—

अतिम्हसि अखंडल हू महि मंडल बोरि लियो बरसो भरसों।
परलौं नर लोक गन्यों घर लों बृजगोउड़ि चाहि बहो बरसों।
लखि गोपनि गोपिन गैयनु लै अनुसोचत ही भय के भरसों।
उठि आतुर है धरनी धरहू धरनी धरु धाय धरयो करसों ॥२७४॥

अथ भयानक रस को लक्षण—

भय परिपूरन भयानक बखानु अवलंबनु विभाव सोई होत जाते
डरु है।
ताहि कीजै करतुति कथा तिनकी कथनु यहै तो उदीपन विभाव को
घरु है।
कहै कवि भूषन कि कैबो कंपु चहुं कोद चितवनि मुख सोखु अनुभाव
थरु है।
घिनि मोह संका चपलाई दीनता गिलानि सुमिरनि आदि व्यभिचारी
भाव भरु है ॥२७५॥

मम कृत रस प्रकाशे यथा

देखे ग्वाल बाल खोरि खेलत न देख्यो ढोडा बूझी श्याम के हाँ उन कही
धौ उकत है।
कहै मुरलीधर महरि धरि दौरि पौरि आई टेरयौ अकुलाई हो महरि
कान्ह कत है।
एई बैठि माट फोरि यहै सुन हसि नंद ज्यों ज्यों लै लकुट ठाड़े आंगन
झुकत है।
चौंकि चौंकि चपल चखन चितै हरि त्यों त्यों सुसुकि सिकुरि माकि
आँक में ढुकत है ॥२७६॥

अथ वीभत्स के लक्षण—

घिन परिपूरन विभत्स रसु जानि दुर्गंध युत जो सो अवलम्बन विभाव है।

ताही की कथा कथनु सुधि सुनि करें इत यहई उद्दीपन विभाव को
ठाउ है ।
नैन नाक आनन को मूंदिवो आंसू पतन उम से वो थूकि वोई अनुभाव
दाउ है ।
मोह व्याधि आवेग अपसमार मति मरनादिक इतहि व्यभिचारी भाउ
आउ है ॥२७७॥

रस प्रकाशे यथा—

सरि सरि विगसि विगसि परयो ठोर ठोर पल को पहार करें अहार
करें पक्षी नहिं ।
अति विकारार उठो दुर्गंध अंधकार महि भननात गननात गीध नाक
महि ।
मुरछि मुरछि गिरे कूकर अरु स्यार बड़ी बड़ी नदी पीव श्रोणित की
चली वहि ।
उछरत नैन नाक मूंदि बृजवासी मोहे कीरगि कल बलात सुनि कैं
अधा सुरहि ॥२७८॥

अथ अद्भुत रस को लक्षण—

विसमोस पूरन कही जो अद्भुत रस अनुपम बात अवलंबन विभाव
कहि ।
कहे कवि भूषण इतहि अनुपम कथा कहिवो सुनिवो सो उदीपन
विभाव लहि ।
परसु उसासु एकटक चितवन हाइ भाइ भले भले गहि लीवो अनुभाव
चहि ।
वितर्क मोह जड़ता हरषु सुमिरनु श्रम औरउ आवेग आदिक व्यभिचारी
गहि ।

यथा—

बूतना कछू पै धरि पूतना पछारी भो अकूत नाग नर सुरलोक भर-
मायो है ।

व्याकुल विलोकत बाल दावा गिन पान कीनो पैठि जमुना जलते काली काढ़ि लायो है ।
कहि कवि भूषण करत ग्वाल हाय हाय हरषत मन अतिरिजु ब्रज छायो है ।
बरसत वासव कुंवर कान्ह हरवर कर गिरवर गोधन उठायो है ॥२८०॥

अथ शान्त रस को लक्षण—

सम परिपूरन कही जो शांत रस अवलम्बन विभाव वैराग्य आदि जानिए ।
कहै कवि भूषण विषय दोष को विचारु आदिक अनेक भाउ उदीपन मानिए ।
घानंद आनंद आँसू गद् गद् बानी रोम हरषन आदि अनुभावनि बखानिए ।
वितरक मतिधृति चिन्ता सुमिरनु आदि भूषण कहत व्यभिचारी भाव ठानिए ॥२८१॥

यथा—

तात मातु पिया पूतु परिजनु धामु धनु सपनो सो जानि जगु छोड़त हंसतु है ।
विषय विचार पाप आपही की पारिदुख लहरै निहार हिय धीरज करत है ।
कहै कवि भूषण करत हरि ही सो हेतु रोम हरषत ही हरषु हुलसत है ।
परम प्रवीन पुर पारथी परम पूरे गिरिवर गहन गुहान में बसत है ।

श्री राजा देवीशाह यथा—

पानी ते प्रकाश करि सिख सबै सिखे मूढ़ पतो बुद्धि [illegible] सुध्यो लई ।

तातन न ताके नेकु ताको है जगतु यह ताके बिनु ताके कहा ताके तिन आनई।
जेते जग जाए तेते लक्षिकाज धाए सबै बेऊ पै नसाए बैन साथ काहू के गई।
हरिसों हितू बिसारि हम मन लाग यौहै पान कर में चुनौती मुख में दई ।।२८३।।

अथ माया रस को लक्षण

प्रगट होत रसु जन हिए, नौईं रस ते आन।
वासो माया रस कहतु, कवि भूषण कवि जान ।।२८४।।

कवित्त—

माया परिपूरन कहत माया रस अवलंबन विभाव पूतनादि आदि जानिए।
किलकनि हंसनि बकै उत चलनि सुपुताई शूरताई आदि उदीपन मानिए।
कहै कवि भूषण पुलक गरे लाइ लीबो चुंबनु चितैबो आदि अनुभाव ठानिए।
हरषु गरबु अमरखु संका मद मोहु कोहु आदि इत व्यभिचारिन बखानिए ।।२८५।।

यथा—

लट लटकीली लटकटि चटकीली चारु मटकीली भौहें करि हरि भटकत हैं।
बालन की बाँहि गहि चलन सिखत फूल फलन दलन देखि देखि अटकत हैं।
कहैं कवि भूषण बिलोकि निज छाँह आपु सहमि सकाय बिलमाय डरपत हैं।
धाइ जाइ कंठ में लगाइ सचुपाइ नन्द चूमि सुत अधर सुधारहि हरष-त हैं ।।२८६।।

अथ रस को अपनी अपना विरोध छंद—

करुन वीर बीभत्स भयानक रौद्र सहित अरि कहु सिंगार करुन भयानक अरि रस हास के।
हासु शृंगार शत्रु कहि करुन के, हास सिंगार भयानक बैरी बीर के।
कवि भूषण रस तीनि शरीर के।
वीर सिंगार रौद्र रसहास सांत विरोध भयानक पास अरि सिंगार बीभत्स रसहि को।
रौद्रजानि बैरी अद्भुतहि को।
रौद्र सिंगारु भयानक हास कहि बैरी सांतहि के पास ।।२८७।।

अथ रसन के विरोध को परिहारु—

समय देश के भेद ते, काहू कारन पाय।
हिले मिले रस होइ जो, नहि विरोध तहँ गाय ।।२८८।।

समय भेद ते रस विरोध परिहारु रस प्रकाशे यथा—

पयपान मिस कियो पोतना को लोहू कान्ह कामनिन हिलमिल किये सुख के उदोत।
डाटे डराने हरषाने सुनि मल्ल मारु लीनो कर गिरवर छीने असुरेस गोत।
तज्यो ब्रज छिनहि में कूबरी विलोक हंसे अपने सुमिरन वियोग पितु मातु मोत।
ऐसी भाँति चरित चतुर भुज ईस हीके सुनि सुनि काके नहि रोम हरसन होत ।।२८९।।

कवित्त—

कटि पीत पटु मुख मुरली मुकुट शीश काँख लटक नटवर की चटक है।

तिल कुट टकु कान कुण्डल कटक बनमाल की लटक तन चटक मटक
है।
वपु धन घटा तामें मोती माल बग ठठ सुन्दर सुभट पग पाँवरी पटक
है।
ब्रज में भटक दधि चोरी की सटक ऐसी चटलु मुरनि सिंह मन की
अटक है ।।२८०।।

देश भेद ते रस विरोध परिहार-यथा—

एक हाथ लीन्हें गिरवर एक सारंग सुधारत हैं सुनि सुनि धुनित असन के।
एक हाथ ऐड़े बेड़े नाचैं एक छाँह करैं ग्वालिन को भौंह देखि दुख के
दसन के।
गोपिन सों करत कटाक्ष एक नैन हेरे गोपन के देह छत छोरे
वसन के।
कहैं मुरलीधर चतुर भुजईस आपु ऐसी भांति रूरे भये रसिक रसन
के ।।२८०।।

इन छै कवित्तन में नव रसन सों विरोध नाहीं।

अथ देव भगति दोहा—

आदि देव गुरु मुनि नृप, भक्ति पाप व्यभिचारीन्ह।
परगट होय जो व्यंग करि, भाव धन्य सो चीन्ह ।।२८१।।

कवित्त—

कामना पुरवै कहूँ जात है बबूर पास निपट निकट सुरतरु को
तजत है।
सीरो पानी पीवे कह प्यासे सुरसरि छाँड़ि मिहर मरीच वान मन को
सजत है।
कहै कवि भूषण हैं लोग सब कृतघन ताही को तजत जासों आप
उपजत है।

अमी को डारि जैसे खार विश फल ऐसे हरि को बिसारि जन आनहि
भजत है ।

राजा देवीशाहि यथा--

कटि पीत पट्ट मुख मुरली मुकुट शीश कांख में लकुट नटवर की
चटक है ।
तिल कुट टकु कान कुंडल कटक बनमाल की लटक तन चटक मटक है ।
वपु घन घटा तामें मोती माल बगटट सुन्दर सुभट पग पाँवरी पटक है ।
ब्रज में भटक दधि चोरी की सटक ऐसी चटकु मुरनि सिह मग की
अटक है । ॥२९३॥

गुरु विषय भक्ति यथा—

संकट कोटि मिटैं निघटैं दुख पाप कटैं उलटैं भय भाजे ।
बारहि बार बुलाई महीपति दाननि दै सत माननि साजे ।
जो सति संपति सो कवि भूपण आनन्द सों अवनी पर छाजे ।
ऐसे गुरु धरनी धर के पग पल्लव के पर भाव विराजे ॥२९४॥

श्री राजा देवीशाह यथा कवित्त–

मकर प्रयाग न्हाइ गोदावरी सिंध जाइ भाँतिन अनेक करि सदा शिव
ध्याइये ।
आठो अंगु जोग करि सुमति को उर धरि नर हरि चरननु चोपि चित
लाइये ।
साधनि सो प्रति करैं वाही भाँति अनुसरैं काहू कौन निदाररैं सब हीको
भाइये ।
गुरु पुन्न के प्रभाव गुरुभाग उदय होत तव देवीसिंह कहै गुरु गुरुहि
उपाइये ॥२९५॥

मुनि विषय भगति यथा—

सुर मुनि आवत देखि हरि, हिय उमह्यो आनन्दु ।
पुरवासी चन्द सम वदनु, दिए सुख कंदु ॥२९६॥

अथ राज विषय भगति यथा—

रामु अकलंक अभिराम काम दानि बलि पैज पूरो पारथ प्रतापी शूर पेखिये ।
अति ही उज्यारो चंदु साहसी समीर नन्द समुद गंभीर भार खंभी शेषु लेखिये ।
पंचम प्रबीन गरु आई मेरु मरदानो भीम गुरु गिरा कवि भूषण विशेखिये ।
एक गुन एक में विलोकयतु एते गुन एक ठौर भूपदेवी शाहिजू में देखिये । ॥२९७॥

अथ थाई व्यंग कवि प्रगट यथा—

मोर पखनि के मोर गुहे घुंघची हरपा लखि दे लखि माखन ।
यह कवित्त सों व्यंजना का प्रगट है ।

देवीशाहि यथा सवैया—

मेरे रहौ उरमें निसि वासर जाँहु तहाँ जँह होहु नहीं ।
ताको मनाओ भलोमन भावन प्यारी तिहारी जहाँ है कहीं ।
वातन के मिलिवे में कहा मनु जासों मिलो मिलि वो तवही ।
अब ऐसी सहावत हो तुम और निजैसी जहाँ तँह आपु सही ॥२९८॥
यह कवित क्रोध स्थाई भाव व्यंजना करि प्रगट है

अथ व्यभिचारी भाव व्यंजना ते प्रगट यथा—

कवित्त—

वीरे वागे वने ठने जनु काम अनेमने सुरसने वेनु को अधर धर कीने हैं ।

वही धुनि सुने उत आइये न नैनी नेक नैन मैन जुरे भये मैन रस भीने हैं।
चकित ह्वै रहे चितवत एकटक मुख चलै न चुल चुवात दोऊ हीनों हीने हैं।
कहैं कवि भूषण मोहन मोहनी मनों मूरति चितेरे चारु चित्र लिखि लीने हैं।

यह कवित्त जड़ता व्यंजना करि प्रगट है।

राजा देवीशाहि—

अनमनो आननु कै अंग ते अनंगु छाँड़ि बैठी कहा आज आली अति ही अमानसी।
एतो हठ सठ स्याम जूसो कियो कहा जानि जानति है जगमँह परी है न मानसी।
उत वहु नाइकै वै इत कह्यौ माननिन हौ तो अब हरि रही जबून जमान सी।
बीच परि कहा कहा करौं कह्यौ कोऊ मानत न फिरि फिरि रहौं दोऊ दूखी कमानसी।

यह कवित्त में निर्वेद व्यंजना करि प्रगट है भाव सात भाव उदय भाव संधि भाव सबल चारि भेद और इतहि भावनु कहतु रसिक नवलइन।

चारिहू के लक्षण—दोहा--

भाव साति जहँ होइ तहँ, भाव साति जे जानु।
मिले होहि जहँ भाव बिव, भाव संधि तहँ ठानु ॥३०१॥
बहुत भाव जहँ मिलत हैं, भाव सबल सों जानु।
उदित भाव जँह होहि तंह, उदित भाव अनुमानु ॥३०२॥

भाव शांति यथा कवित्त—

सुन मान घती तिय ताहि मनावन को मुरलीधर भौन गए।
बतियाँ बहु भाँति बनाइ कही उमही अधिकै मधुराई लए।
पुनि पाँय गहे हरि राधिका के अँखियान अहो इमि रूप ठये।
पहिलै सरसी रुह शोणित है फिरि नील सरोज समान भये।
यह कवित्त कोप भाव की शान्ति है।

राजा देवीशाहि यथा कवित्त—

कंज कर करभोरु कह्यौ कर कामनिए कमल नयन कान्ह तेरे घर आये हैं।
नागरि नवाइ नैन नीचे ही निहारैं नील नीरज समान दुति देखन सुहाये हैं।
पाँइ परैं पलु पलु पाणि पति पूमनिय जाके पाइ परे देवी देवता कहायें हैं।
चंद मुखी चक्षु कोर चितयो चमक सह मानु तजे मानिन मननि सुख पाये हैं।

अथ भाव उदय—

पिय कह्यो तेरो मुख शशिसों जए हैं सुनि हँसि कै कटाक्ष कोटि उपमा कनक की।
पिय कह्यो तेरी बानी बीन सम अनुमानी सातों सुरसानी सो तो जड़ु जानि हानि की।
कहै कवि भूषण कहाँ लौ कहौं अंग प्रति जोई करी सारि सोई इन सम सान की।
सान की निकाई तरुनाई चतुराई वर काहू न गनति अलि बेटी बृष भानु की।
यह कवित्त गरव भाव को उदय है।

श्री राजा देवीशाहि यथा-

कबहूं बननि जाय कबहूं बननि जाय आगरु निहारे तऊ उपमा न जानने ।
नखनि बिलोक अरु नखत निरीछनु हैं अधर सुधा के बिंबबुधि हरमान ने ।
हेरनिमें हर लीनो हंसनि में मनु दीनो गजक बिनाही गोरी गीधए
गान ने ।
मुख को निहारी अरु चंदनन चाहि रहे फिरि फिरि मूंघत कमल अरु
आनने ॥३०६॥

यह कवित्त वितरक भाव को उदय है ।

भाव संधि यथा सवैया—

अति के रतिकै अनतै रतियां छतियां नख रेख लिखी डह कैं ।
चलि आये अली मुरलीधर राधिक भौन सुबासु महा मह कैं ।
पिय बेसु बिलोकु प्रिया जिय में रिसि बेलि अहो उलटी लटकैं ।
मुख चंद लखे मनमोहन को फिरिकै तिय ह्वै रस सों चहकैं ॥३०७॥
मजनु कै अंगराग आंगन में बैठी आनि सुबन सुमन हार नैन जुग आंजे हैं ।
बैनी गूंथि रुचिसों रुचि करु रूमालु लै आदर सदरसि कपोल गोल
मांजे हैं ।
पीव आये हरषि निरखि कै सकुच गई पाइनि तो ठाड़ी भई मनपाई
भाजे हैं ।
करु गह्यो लाल जब कोमल मृनाल सम गोरे मुख पर थोरे कनका
बिराजे हैं ॥३०८॥

यह कवित्त व्रीडा और त्रास की संधि है ।

अथ भाव सवल यथा—सवैया-

पियसों मिलियों बतियां कहिबी कुल कानिन केहू मिटै सखि है ।
चलिरी चलिधौं कब कान्ह मिलैगो मिले बिन काम अरी मखि है ।

समबो अलि होन दे को हमतू नहिं जानत कोऊ कहा लखि है।
उगयो शशि हाइ कहा करिये अब भोरु भयो हरि क्यों अखि है॥३०६॥
यह कवित्त वितरक ब्रीडा संका विषाद चपलता औत्सुक्य मत्ति त्रास धरिताई।

गरब संका विषाद इन व्यभिचारी भावनि कै सबलता है।

अथ रसाभास तथा भावभास छंद—

एकहि तिय के बहुत पुरुषन सों जु प्रेम बखानिए।
पर तिअन सों जँह एक पुरुष के प्रीति वरननु कवित में जिन आनिए।
अन उचित ते रसभास भावाभास सोइ मानिए॥३१०॥

एक नाइका के बहुत नाइकन सों प्रेम वर्णन यथा—सवैया

एकनि सों मुरिकै मुसक्याति है एक निसों दुर सैन दई है।
बोलत एक बुला बहिगे एक एकन अल बोलि गई है।
खंजनु मंजनु कै दृग अंजनु रूपहि सों रति जीति लई है।
नायक रंग समान भये सब तू तिस नीर सरूप भई है॥३११॥

एक नायक सों बहुत नाइकान सों प्रेम वर्णन रस प्रकाशे यथा—

ऐसीधौं हों ब्रज में वनिता रति मानिकै जो तुअ पास न आई।
बासु लै ज्यों अलि फूलते फूलहि जातु जो को तुमते न मँगाई।
बेलि सी फैलि रही नित प्रीति तिहारी तिआ तरुछाई।
सीधे से लागत हो मुरलीधर एती कहौ कत पाइ धुताई॥३१२॥
इन दु हुन कवित्त न में सिंगार को रसाभास है।

अथ आभासास नायक ही के रति यथा—

दोहा—देखि देखि छवि को सदनु, सीप वदनु कल नैनु।
पुलकत दस मुख अंग सब, मन में उमहत मैनु ॥३१२॥

नायका के रति यथा—

रामरूप लखि काम सम, वाम धाम तजि धाइ।
मैन बान बस है हंसै, मग में अंग दिखाइ ॥३१३॥

यथा कवित्त—
पिय को मन अंतहि अंत फिरै सखि मेरो तौ लाग्यो उन्हैं चितु है।
प्यारे को जीव रिझावन को कहियौं अब कीजै कहा कितु है।
उन संग बिना मन मानै नहीं उर अंतर में जमुहाहितु है।
हाथ रहे नहि छूटै नहीं चकईरी भयो सखि मो चितु है ॥३१४॥

अथ रसन के आखर—

सांत करुणा सिंगार रस, मधुर वचन करि हानि।
अति प्रचंड आखरन ठनि, और रसनि बखानि ॥३१५॥

इति श्री गहर वार बुंदेल बंश बारिज बिकासन मार्तंड राज लक्ष्मी रक्षण विचक्षण दोर्दंड महावीराधि वीर राजाधिराज श्री राजा देवीशाहि देव प्रोत्साहित त्रिपाठी रामेश्वर आत्मज कवि भूषण मुरलीधर विरचिते अलंकार प्रकाशे रस निरूपनो नाम षष्टमो: उल्लास:

अथ व्यंजना निरूपण तत्र व्यंजना के लक्षण

दोहा—प्रगट कवित के अर्थ ते, और अर्थ उत्पाति।
धुनि की झांई मिलि यहै, कही व्यंजना भाँति ॥३१६॥
सुतो व्यंजना माँहि हू, कहत महाकवि जानि।
प्रथम लक्षणामूल बिबि, अभिधा मूल बखानि ॥३१७॥

अथ लक्षण मूल व्यंजना को लक्षण—

प्रगट कवित को ग्रर्थ जँह, नाहिन ग्राहि प्रधानु ।
यहै ग्राहि ग्रप लक्षणा, मूल व्यंजना जानु ।।३१७।।
प्रगट कवित के ग्रर्थ जहँ, नाहिन ग्राहि प्रधानु ।
कवि भूषण के निजु मते, द्वै भेदनि सों जानु ।।३१८।।
एक ग्रान ही ग्रर्थ में, प्रतिबिम्बित इमि जानु ।
दूजे इत मूदे ग्ररथु, कोपै करै बखानु ।।३१९।।

ग्रान प्रतिबिंबित यथा—

पारसु सोतो पारसै, सुरभी सुरभी ग्राहि ।
सुर तरुवर सुरतरु बरै, तुव सम कीजे काहि ।।३२०।।

यह कवित्त दुरो जोहै पारसु सुरभी सुरतरु तरु ए तीनों जड़तारूप ग्रर्थ प्रतिबिंबित है ।

यथा कवित्त—

सबु तनु सुमनु सरोज कला सोहैं कुच ग्रधर मधुर दुति बिंबकी लषति है ।
चंद के मँझार मानो चपला चमक चारु चोप सहघोफ से हैं जब ही हसति है ।
भूषण ते छवि ग्ररु छवि लेत भूषण को हरि कटि हरिन सी किंकनी कसति है ।
सिरलाल ग्रोढनी है लाल बागो सोहियत है ललित सलोनी उर लालके बसति है ।।३२१।।

यह कवित्त दूतिका उपपतिसों कहति है कि वह नायका ग्रति दुर्लभ है तुम बिन काज को मेरे ग्रावत जात हो यह ग्ररथु ललित सलोनी उरलाल के बसति है थाहि मों प्रतिबिंबित है ।

अरथमूदो यथा—राजा देवीशाहि—

चंदन पंक में बैठि रहे नित अंग कपूर को मीहि लगावै।
बेहर बीज न बरकी अंधियारी में दाही सी चोसन चेत जनावै।
पंकज पत्रन लीनी लपेट पैभार के मारे कछू नहि भावै।
पानते पानई वासु सुवामुइ पीय बिना निसि नींद न आवै ॥३२२॥

यथा राजा देवीशाहि—

सूंघे शान्ते का कछू कबहूँ करत अनीति।
सकल गुननि की खानि हरि करि जसुमति परतीति ॥३२३॥
यह कवित्त हरिशब्द बहुत अनभले हैं यहि अर्थ मूदो है।

अथ अभिधा मूल व्यंजना ता को लच्छण—

प्रगट कवित को जहाँ पै, परम होतु परधान।
सुतो व्यंजना कवित में, अभिधामूल बखानु ॥३२४॥
प्रगट कवित को अर्थ जो, परम ह्वै परधानु।
कवि भूषण इमि कहत हैं, द्वै भेदनि सो जानु ॥३२५॥
परगट क्रमु द्वै भेद ए, एक अप्रगट क्रमु ठानु।
परगट क्रम एक दूसरो, अनपरगट क्रय जानु ॥३२५॥

परगट क्रम तीनि भेद ताको व्यौरा—

शब्दहु ते अरु अर्थते, शब्द अर्थ ते होइ।
तीनि भेद इमि कहत हैं, परगट क्रमु कवि लोइ ॥३२७॥

अन प्रगट क्रम ताको लच्छण—

रस विचारि व्यभिचारि मिलि, अगनित भेदन जानि।
यह कहि भेद बखानिये, प्रनु परगट क्रम आनि ॥३२८॥

अथ प्रगट क्रम के तीनिभेद ताको लक्षण—

जितहि शब्द उलटै नहीं, शब्दै ते सो जानु ।
जितहि शब्द उलटै तहाँ, अर्थहु ते अनुमानु ॥३२९॥
कछू शब्द उलटै कछू, नहि उलटै इमि ठानु ।
शब्द अर्थ ते होत है, परगट क्रम अनुमानु ॥३३०॥
शब्दहु ते जो प्रगट क्रम, सो दुभाँति को होतु ।
एक वस्तु हिय प्रगटै, अौलंकार उदोतु ॥३३१॥

शब्द ते व्यंग वस्तु यथा—

देखि देखि अलि देव मग, रति कीन्हे द्विजराजु ।
हत्यौ कला निधि पै भयो, दोषाकर अब आजु ॥३३२॥

यह कवित्त विरहिनी कहती है कि एतो बड़ो ऐसो पंडित चंद्रमा हमको दुख दाता भयो यह वस्तु व्यंग्य है। द्विजराज कला निधि दोषा करये नाम छोड़ि जो और ना करिये तो यह वस्तु व्यंग्यन होई सो यहाँ सबमें वस्तु व्यंग्य है ।

शब्द ते अलंकार व्यंग्य यथा—

नहिन भीति नहि रंगु है, नहिन आहि कछु साजु ।
जगत चित्र अनुरुचि रचे, मन ही सो महराजु ॥३३३॥

यह कवित्त चित्र पद ते चितेरे ते प्रजापति अधिक है। यह वितरेक अलंकार व्यंग्य है ये जो चित्र पद को प्रयोगु न कीजै तो वितरेका अलंकार की प्रतीति न होइ।

दोहा— अर्थ हिते उपजति जुहै, परगट क्रम सोइ मान ।
बारह भेदनि सों कियो, कवि भूषणहि बखान ॥३३४॥

बारह भेद यथा—

वस्तु अलंकारहि कहै, अलंकार कहै वस्तु।
अलंकार अलंकार को, कहै वस्तु को वस्तु ॥३३५॥
यह चारो कविवर कहत, तीनि भाँति करि ठानु।
कवि निबद्ध वकता उकति, प्रौढ़सिद्धि एक मानु ॥३३६॥
कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध विधि, पुनि, सुसिद्ध अनुमानु।
अर्थ ते बारह भेद इमि, परगट क्रमहि बखानु ॥३३७॥

अथ कवि निबद्ध वक्ता की प्रौढ़ोक्ति सिद्ध यथा—

दोहा—तुवमुख की सुखमा जित्यो, बिकसत बारिज बिंदु।
जल में तुरत लजाइ मनि, सम्पूरन लखि इन्दु ॥३३८॥

यह कवित्त तुव मुख शोभा जित्यो यह जो है वस्तु ते हितै नायका के मुख जान रूप भ्रान्तिमान अलंकार व्यंग्य है। यहाँ अचेत कमलनि को ग्यान वर्णन प्रौढ़ोक्ति है।

दोहा— दीप बुझाने हू भई, नगन की जग मग जोति।
हरि के हिय में है सखी, मुक्ता वरषा होति ॥३३९॥

यह कवित्त दीप बुझाने फिरि नगन की उजयारी भये यह जो पूर्व रूपता अलंकार ते हुते हरिके उरमें तिया बरषा भई यहि ते विपरीत सुरति रूप वस्तु सो व्यंग्य है यहाँ नगन ते अति उजियारी मोतिन की बरखा प्रौढ़ोक्ति है।

दोहा— शशि अथये तम में तुरत, परछाँही मिलि जात।
ल्याइ चली अलि अंग की, उजयारी अधिकात ॥३४०॥

यह कवित अँधियारी विषय परछाई मिलि गई है यह जो है मिलति अलंकार तेहि ते चन्द्रमा अथये अंगनि करि उजियारी भई यह पूर्व रूपता

अलंकार व्यंग्य है। यहाँ अँधियारी विषय, परछाँही वर्णन अरु अंगन की उजियारी यह प्रौढ़ोक्ति है।

दोहा— पिय आलिगन ते सखी, मेरे उर अति शान्ति।
नाते हू चंदन लही, तित थित शीतल भाँति ॥३४१॥

यह कवित्त पिय आलिगन रूप जो है वस्तु तेहि ते चंदन विषे शीतलता रूप वस्तु व्यंग्य है यहाँ नायका के उरते चंदन विषे शीतलता प्रौढ़ोक्ति है।

दोहा— कौने बन में तपकियो, केहरि करी कुरंग।
तरुनी तन अंग अंग की, छवि पाई बहु रंग ॥३४२॥

यह कवित प्रौढ़ोक्ति सिद्ध है। यह कवित्त तपस्या रूप वस्तु ते केहरि करी कुरंग कटि गति नैन यह यथा संख्या अलंकार व्यंग्य है। यहाँ पशुन की तपस्या वर्णन प्रौढ़ोक्ति है।

दोहा— हरिजू के भुज बीच मे, परन चनू रहि जानि।
तासु बीर रस भाजिगो, पीडन शंका मानि ॥३४३॥

यह कविस्त पीडन संका तोमानो चाणूर को वीर रसु भाजिबोउ यह जो है उत्प्रेक्षा अलंकार तेहिते चाणूर विकल भयो यह जो है वस्तु सो व्यंग्य है यहाँ अचेतन वीर रस के संका वर्णन प्रौढ़ोक्ति है।

दोहा—नलिना सन सों करि मनों, अधिक ईरषा ठानु।
कवि बानी ठिक ठाक सों, ठयो नयो निरमानु ॥३४४॥

यह कवित्त ब्रह्मा सों मानहु ईर्ष्या कै यह जोहै तेहि ते बानी नवो निरमानु करियतु है यह जो व्यतिरेक अलंकार सों व्यंग्य है यहाँ अचेतन कवि वाणी की ईर्ष्या वर्णन प्रौढ़ोक्ति है।

दोहा— कहाँ दानु धौहै दियों, मुक्ता फल कहि काल।
तुव सुरंग अधरा लह्यो, थल अनूप सनिवाल ॥३४५॥

यह कवित दान रूप वस्तु ते तुम अधर बहुत पुण्य करिपाइयतु है यह वस्तु व्यंग्य है यह है मुक्ताफल को दान वर्णतु प्रौढ़ोक्ति है ।

अथ सुसिद्धि यथा दोहा—

दक्खिन दिसि सविताहु को, तुरत तेज घटि जात ।
ताही में रघुनाथ को, अति प्रताप अधिकात ॥३४६॥

यह कवित दखिन दिशि सूर को तेज को घटतु रूप वस्तु ते दक्षिण ही में राम को तेज बढ़तु यह सुसिद्धि है सुसिद्धि है सुसिद्धि कहावै जो जा भाँति विधाता रच्यौ है ताको ताही भाँति-वर्णन ।

दोहा— हरि मुख देखत तीय के, भये प्रफुल्लित नैन ।
येन तेन परकार कै, करी तुरत बस मैन ॥३४७॥

यह कवित पिय मुख देखि तिय के प्रफुल्लित भये नैन सों पिय मुख चन्द्रमा अरुतिय के नैन नील कमल यह उपमा अलंकार ते काम बस कीनो यह वस्तु व्यंग्य है । रसु सिद्धि प्रगट है ।

दोहा —पीय दसन छत ते दुखित, अरि तिय अधिक अनूप ।
तिन को दुख मेटो समर, ओठकाटि निज भूप ॥३४८॥

यह कवित्त अरि तयिन के ओठ काटि वे ते छुटाए निज ओठ काटि यह तो विरोध है अलंकार तेह ते शत्रु सेना जीति शत्रु मारे यह समचै अलंकार व्यंग्य है सोसिद्धि प्रगट है ।

दोहा— नहिं आली अब बावनहि, हौं जैहों सुनि बात ।
उड़कै मो उर बैठि सुक, कीन्हे नख के घात ॥३४९॥

यह कवित्त अब हों बावन न जैहों यह जो है वस्तु तहिते सुआ के नख छतन ते नायक संभोग मूदियो रूप वस्तु व्यंग्य है स्व सिद्धि प्रगटई है ।

अथ व्यंग्य की संख्या दोहा—

व्यंग्य लक्षना मूल द्वै, शब्द हुते द्वै जानु ।
अर्थ ते बारह भेद जो, सोरह भेद बखानु ।।३५०।।
सबै अर्थ ते व्यंजना, भाँति एक ही होइ ।
पद समूह ते जानि इमि, कहत कवीश्वर कोइ ।।३५१।।

यथा—

सुमन सरस प्रफुलित कमल, शशि रुचि आयो काम ।
आनन्दित युवती भई, लखि माधो अभिरामु ।।३५२।।

यह कवित्त माधव जैहै हरि जूते बसंत ऋतुसम है यह उपमा अलंकार व्यंग्य है ।

दोहा— पद में पद के अंश में, पद समूह में ठानु ।
रचना में अरु अंखरनि, पर पर बन्धहु में मानु ।।३५३।।
अन परगट क्रम जानिये, षट भेदनि इमि ठानि ।
कवि भूषण निज बुद्धि बर, उदाहरण अनुमानि ।।३५४।।

पद में यथा दोहा—

बनहि गई नहीं तू अली, वा पापी के गेह ।
कहे देत किंशुक कुसुम, आभूषण तुम्र देह ।।३५५।।

यह कवित्त तू वासो संभोग सुख करि आई यह पद पापी पदतें व्यंग्य है ।

यथा राजा देवीशाहि-

खेलहु क्यों नहिं वेगु हंसो किनि बातन मों सह प्यारी कही जू ।
काजरु दीजिये जावकुलाई ये अंग और सुगंध लही जू ।

पाननि खाहु पियाऊ सुधा रस सेज में आइ कै पौढि रही जू।
कीजै मया अब चूक छमौ इतनी तुम भूल हमारी सही जू ॥३५६॥

यह कवित्त आगे हम तुम्हारी अपराधु न करि हैं. यह अब पद ते व्यंग्य है।

पद के अंश में यथा दोहा–

सुनि सखी मेरी तू अली, हौं भापति सति भाउ।
मान बती तेरे तुरत, पर तेई हरि पाउ ॥३५७॥

यह कवित्त हरि अपराधी नाहीं आप सो यह व्यंजनाते प्रगटई यह पद के अंश ते है।

यथा श्री राजा देवीशाहि–कवित्त—

मोती माल कंठ सो है नख तकी दुति को है अरु सोहै हरिनसों जेहरि जराई की।
ऊजरो हियो बसन अंगराग ऊजरोही मेरे जानि चंद किरनि सों भराई की।
जोन्ह ही में मिलि रही फूलनि सों बेनी गुही निरमल हार दुति देह की गुराई की।
कुचनि में स्याही कै ललाई अति ओठन की हंस की सी गति सीरी धरन धराई की ॥३५८॥

यह कवित्त जोन्ह ही में यह पद में जो है ही तेहिते नायका महा सुधर ऊजरी है यह व्यंग्य है।

पद समूह मांह यथा दोहा–

भरी हरी फूली फली, बनराई अभिराम।
फूल माल गूंथी उतहि, तुअ कारण हौं स्याम ॥३५६॥

यह कवित्त हौं वहाँ गई अरु बहुत बार लौं रही पै तुम वहाँ न आये पद समूह ते व्यंजना है ।

यथा श्री राजा देवीशाहि कवित्त—

पाननि के खात पीक पेखियत उरमाँझ पाइके धरत कटि लवली ज्यों लहकै ।
सफरी समान नैन सहज में देखियत खंजन सरिस होत अंजन दै तहकै ।
और तौ निकाई सब नारिन में होत अहै कुंकुम सुवास कहूँ अंग अंग महकै ।
मुख की निकाई नीति बचन निकाई ऐसी पंकज प्रवेश किये पिक मानो महकै ॥३६०॥

यह कवित्त तुम बहुनायक हौ पै वह नायका बहु अनुपम है सो वाहि मिलि सुख कीजै यह पद समूह ते व्यंग्य है ।

रचना यथा कवित्त—

पहिरे नक बेसरि केसरि की विदुली दई अंजनु नैननि नीको ।
झुकि झालर कीसँ बराई के माँग बनाइ बँधाइ जराइ को टीको ।
पग नूपुर पैंधि यशोमति के ढिग कान्ह है रुपु धरे सुलही को ।
लखि नंद को दूर ते आवत ही हरि बैठे हैं घूँघट कै दुलही को ॥३६१॥

आखरन यथा कवित्त—

सोहत सोनेहि को गहनो नख ते सिखलौं बरहारु लुटे ही ।

यह पूरी कवित्त 'प्रसाद' का उदाहरण है २५ पृष्ठ पर देखिये यह कवित्त मधुर वर्णन कर सिंगार रस के मधुरता व्यंग्य है ।

यथा राजा देवीशाहि कवित्त—

सरस सुगंध युत आनन विलोकि आछो अगुरी लपेटि लटपटैं झकि
झूमिये ।
कचनि लम्बाई गोरी ग्रीव की गुराई देखि समदन मद ममदाके मद
घूमिये ।
कंज खंज गंज अंग देखि द्युति हीन होत कहूं कोई सरि कौन तीनि लोक
तूमिये ।
चंचल चमक चुमे चोखे चित चोर चारु चतुरतिया के चख चोप सह
चूमिये ॥३६२॥

यह कवित्त रसानुकूल आखरन करि सिंगार रस की मधुरता व्यंग्य है ।

अथ प्रबन्ध में यथा—

महाभारत में शान्त रस व्यंग्य है, रामायण में करुणारस व्यंग्य है ।

अथ व्यंजना को ब्यौरा यथा—दोहा—

भेद लक्षना मूल द्वै, शब्दहु ते द्वै जानु ।
अर्थहू-बारह भये, भेद व्यंजना मानु ॥३६३॥

सो यह भेद जो व्यंजना, पद समूह में ठानु ।
कवि भूषण ताते भये, बत्तिस भेद सो जानु ॥३६४॥

अर्थहु ते जो व्यंजना, भूषण कवित में होइ ।
पर बन्धुहु में जानिए, बारह भेदनि सोइ ॥३६५॥

यह बारह भेद नाटकादिक में प्रसिद्ध हैं ।

दोहा— शब्द अर्थ ते होत है, इतहि व्यंजना जौन ।
एक भेद करि जानिये, कवि भूषण अब तौन ॥३६६॥

बत्तिस ३२ बारह १२ एक १पट ६ मिलिये इक्यावन ठानु।
कवि भूषण व्यंग्य के, शुद्ध भेद ये मानु ॥३६७॥

शंका अरु संसृष्टि में, भेद व्यंजना केव।
कवि भूषण कवि के मते, ठनि सह सनि गनि लेव ॥३६८॥
सकल व्यंजना भेद ये, पीछे भाषे जेइ।
कवि भूषण अरु फिरि कहत, षट प्रकार करि तेइ ॥३६९॥
इकु साधारणु दूसरो, कही विशेषहि जानु।
तीजो मध्यम इत चउथ, संदेहित अनुमानु ॥३७०॥
पंचवो कहीं उत्प्रेक्षा, छठौं दुकैवो ठानु।
कवि भूषण कवि कहत इमि, षट प्रकार करि जानु ॥३७१॥

साधारण यथा–

यह चही चातुरी सों चोपन की चारुतासों चुभित चहक चित चाउ उपजा वती।

ताते ऐसो कवित्त कावो जाते महाकवि रीझै अब जो है सिखावन रूप धुनिसों सब को साधारण है।

विशेषि यथा दोहा–

पथिक ठाँऊ नहि गाऊँ में, इति वसीति असि पेजु।
उन ये देखि पयो धरनि, बसिये तौ वसि येजु ॥३७२॥

यह कवित्त विशेष जो है पथिक तासों नायका व्यंजना सो कहति है कै तुम यही गाँऊ रह्यौ मोसो संभोग सुख करौ।

दोहा—नहि साधारण है जहाँ, नहि विशेष जहँ आहि।
कवि भूषण कवि के मते, कहिये मध्यम ताहि ॥३७३॥

यथा कवित्त—

बेलि नये दल झेलि चहूँ दिसि फैलि रही अलि केली मचाई।

भूषण भीतर द्यौस निसा रवि चंद मयूख समीर न जाई।
कोकिल केकी कपोतनि कीन्हे बुलाइ कहूँ मन में न सकाई।
घोर घटा घन की घुमड़ी जिमि ऐसी अली उमही बनराई ।।३७४।।

यह कवित्त नायका कहत है तौ अपनी सखि सोए वहाँ एकान्त है सो वहाँ जाइ हम तुम संभोगु कीजै यह नायका सों व्यंजना करि कहत हैं।

अथ संदेशु यथा दोहा–

हरि सों कहियो जाइ हो, पथिक संदेश हमार।
भये जमुन जल केरिकै, काली विष की भार ।।३७५।।

यह कवित्त यहाँ आइ हमारो दुख दूरि करो यह संदेश ते व्यंग्य है।

अथ अनादर ते यथा दोहा—

अति पुनीत द्विज आजु ते, इत फिरि ये निरसंक।
हनो कूकरा सिंह सो, बसत बाग के अंक ।।३७६।।

यह कवित्त बाग में सिंह है यह जानि यह ब्राह्मण फल फूलनि को वाही जनि जाउ वहाँ एकान्त हम प्रीतम को मिलि सुख कीजै यह व्यंग्य है।

अथ दुकैवौ यथा—

गई आजु हौं बागनहि, सीरी लगी बयारि।
अजहूँ लौं अंग कंपु अलि, तन रोमंच निहारि ।।३७७।।

यह कवित्त कीनो जो सुरत ताहि दुकावत यह व्यंग्य ते जानियत है।

दोहा— करतूतिहुँ ते होत है, कहूँ व्यंजना जानु।
कवि भूषण कवि के मते, कविवर करत बखानु ।।३७८।।

पीतवसन उर लै धरयो, मुरलीधर सचुपाइ।
नील बसन उर लाइकैं, राधिका हू मुसकाइ ।।३७९।।

यह कवित्त हरि अरु राधिका अपनी अपना कहत है कि तुम हमारे उर बसत हो यह व्यंग्य है।

अथ वाच्य व्यंग्य दोहा—

बरनन बसते अर्थ ते, और अर्थ जहँ होइ।
कवित माँह कविवर कहत, वाच्य व्यंग्य कहि सोइ ।।३८०।।

यथा—

अति प्रसन्न रति देव मग, सुधिकर कला निधानु।
ऐसो है द्विजराज तो, करतु जगत सन्मानु ।।३८१।।

यह कवित्त प्रधान चन्द्रमा को बरननु है पैं बरनत ब्राह्मण बरनन रूप जो है अर्थ सो प्रधान ही पै वाच्य व्यंग्य है। इति श्री गहेर वार बुन्देल वंश वारिज विकासन मार तंड राज लक्ष्मी रक्षण विचक्षण दो दँड महा वीराधि वीर राजा धिराज श्री राजा देवीशाह देव प्रोत्साहित त्रिपाठी रामेश्वर आत्म जकवि भूषण मुरलीधरविरचिते अलंकार प्रकाशे व्यंजना निरूपनो नाम सप्तमो उल्लासः।

अथ काव्य भेद विचार—

दोहा— जित प्रधान हू अर्थ ते, लिये चातुरी होइ।
व्यंग्य वहै धुनि ताहि युत, उत्तम काव्य कहोइ ।।३८२।।

यथा—

बनहि गई अलि तू नहीं, वा पापी के गेह।
कहे देत किंशुक कुसुम, आभूषण तुम्र देह ।।३८३

यह कवित्त प्रधान अर्थ ते व्यंग्य अति चातुरी सहित है।

यथा राजा देवीशाहि

चितु बसै वह मांहि वह बसै चित्त मांहि इतनो सोहागु सोतों ताही में समातु है।
पिक कैसी प्यारी बानी रूप करि रति रानी पिय जिय बसी जानी चंपकु सों गातु है।
लखिये जो वहु नारि रूप गुन निधि बारि तके ताको तनु मनु ऐन तनु जातु है।
किंगरी बजाइ बजाइ करि घटि-बढ़ि लै सुधारि स्वर परकरु जे सजाइ ठहरातु है ॥३८४॥

यह कवित्त नायिका अति सुन्दर अरुगुन निधान है यह व्यंग्य है।

अथ मध्यम काव्य भेद विचार—

छंद—अगूढ पहिलोई जानु ।१। दूसरो अपर अंग बखानु ॥२॥
कहि अर्थ सिद्धि अंग तीजो जानु ।३। प्रगट चौथो मानु ॥४॥
ससंइत पचवों सम प्रधान ।५। छठो इलहितु ठानु ॥६॥
सतओं का कंस युत जानु ।७। अठवों सुन्दर ठानु ॥८॥

अथ गूढ़ को लक्षण—

आन अर्थ प्रतिबिम्ब जहँ, अति ही परगट होइ।
कवि भूषण के मते है, अगूढ़ वै सोइ ॥३८६॥
अति प्रचंड धुनि तीनि ते, कहा दुरावत मोहि।
सुनि सांवरि क्यों बिसरिगो, कुंभ तनय मन तोहि ॥३८७

यह कवित्त अगस्तमुनि तोहि पी डारि है यह व्यंग्य अति प्रगट है।

अथ अपर अंग दोहा—

एकहि रस के पोष को, जितहि होइ रसु और।
कबि भूषण कहि जानिये, अपर अंग ता ठौर ॥३८८॥

यथा—

पढ़ौ पूत कहा पढ़ौ पूछें प्रहलाद पढ़ौ परम पुरुष ही को नाम नेह नयो है।
सुनि कोप्यो काल सम शीशु काटिवे को असुर करेरो करवाल कर लयो है।
मारयौ बार बीश पै न बारे ही को बार मुरयौ कहै कवि भूषण यै है न मुरि गयो है।
यहै अवरेखि एकटक अवलोक पाते उर अचरि जु हरनाकुशहि भयो है ।।३८९।।

यह कवित्त रौद्ररस अंग है अद्‌भुत रस अंगी है।

अथ अर्थ सिद्धि दोहा—

जितहि व्यंग्य पैं कीजिए, अर्थ सिद्धि के काज।
अर्थ सिद्धि अंग ताहिसों, कहत महा कवि राज ।।३९०।।

यथा—

धाइ आइ अकुलाइ कै, पाप तरनि आधार।
सकल जगत जन होत हैं, व्याधि समुद के पार ।।३९१।।

यह कवित्त तरनि यह जो है शब्द सो नाव अरु सूरज को कहत है पै वरनन वसंत सूरज विसे नियमत है ए नाव को व्यंजकु है सो व्यंग्य जो है नाव सो व्याधि वारिध रूप अर्थ सिद्धि को अंगु है।

अथ अगट दोहा—

नाहिन परगट व्यंग्य सोइ, जासु कवित्त में होइ।
कवि भूषण कवि के मतै, अन परगट कहि सोइ ।।३९२।।

यथा —

अति सुरंग कुंकुम रंगे, तरुनी के कुच दोउ ।
मो मानस अवगाह ही, मीत आइ चलि जोउ ।।३९३।।

यह कवित्त कुच दोउ चकई चकवा के सम है यह जो है सो व्यंग्य सो प्रगट नहीं है ।

अथ संशय दोहा–

जितहिं कवित्त में व्यंग्य को, संसय अति ही होइ ।
ताहि जाति संसय कहत, कवि भूषण कहि कोइ ।।३९४।।

यथा —

तरुनी के लोचन कवल, भये श्रवन अवतंस ।
देखि देखि अति प्रेम सों, प्रीतम करत प्रशंस ।।३९५।।

यह कवित्त धौ लोचननि की बड़ाई व्यंग्य है कै कमलनि की समता व्यंग्य है यह संदेहु है ।

अथ संप्रधान दोहा—

अर्थ प्रधान औ व्यंग्य जहँ, दोऊ होत प्रधान ।
संप्रधान इमि जानिये, कविवर करत बखान ।।३९६।।

यथा —

तरुनी आननि की दिपति, यों पति की परचार ।
सकुच सरोज लजाइ जल, तरत दुरत सुकुमार ।।३९७।।

यह कवित्त तरुनी को आननु कमलिनी जीततु है यह अर्थ प्रधान है । यह चन्द्रमा की समता व्यंग्य है और चन्द्रमाउ कमलन जीतति है ताते आनन अरु ए दोऊ सम प्रधान है ।

अथ वाक्रोत्यि संयुत—

काक उकति ते कवित में, व्यंग्य जहाँ पै होइ ।
सुनो काक संयुक्त है, कहै कवीश्वर कोउ ।।३९८।।

यथा—

बीर धीर रघुबीर के, समुद गहे पद दोउ ।
अब रावन अति गर्व युत, होत हवै तो होउ ।।३९९।।

यह कवित्त जो समुद्र को खाँवा के रावन गर्वी हो सो रामचन्द्र के पाँइ जाइ पकरे गर्व को औसर नाहीं व्यंग्य है ए जाय रावन मख करो यह काक संयुक्त है ।

अथ असुन्दर दोहा—

जहँ प्रधान हो अरथ ते, व्यंग्यन नीको होइ ।
कवि भूषण के निज मते, कहिअ असुन्दर सोइ ।।४००।।

यथा—

उदित चन्द प्रफुलित कुमुद, कुलित कमलिनी जोइ ।
चकई को मुख देखि कै, चकवा व्याकुल होइ ।।४०१।।

यह कवित्त होवै आजो विरहु है सो व्यंजना है पै प्रधान अर्थ सोई सुन्दर है ।

दोहा— आठ भाँति इमि व्यंजना, अप्रधानु को ठानु ।
मध्यम कवित्त के भेद जो, कविवर करत बखानु ।।४०२।।

अथ अधम कवित को लक्षण

दोहा— शब्द चित्र यकु दूसरो, अर्थ चित्र को जानु ।
बिना व्यंजना पै दोउ, अधम कवित्त अनुमानु ।।४०३।।

अथ शब्द चित्र अरु अर्थ चित्र—दोहा—

आडम्बर आखरनि को, शब्द चित्र जो जानु ।
अद्भुत अर्थ कवित्त जो, अर्थ चित्र सों मानु ।।४०४।।

अथ शब्द चित्र यथा—

लाल लाल पल्लव ललित, लता लोल लीलान ।
अवलोकत अलिमाल मिलि, ललकि कलत की लान ।।४०५।।

यह कवित्त लकारन को आखंडन है ।

अर्थ चित्र दोहा—

लंकपुरी कुल कंचनहि, रचे कोट आगार ।
मनहु सीय विरहागि की, ज्वाला उठी अपार ।।४०६।।

यह कवित्त अर्थ चित्र प्रगट है ।

इति श्री गहर वार बुन्देल वंश वारिज विकासन मार्तंड राज्य लक्ष्मी रक्षण विचक्षण दो र्दण्ड महावारिधि वीर राजा धिराज श्री राजा देवीशाह देव प्रोत्साहित त्रिपाठी रामेश्वर आत्मज कवि मुरलीधर भूषण विरचिते अलंकार प्रकाशे कवित सरूप निरूपनो नाम अष्टमो उल्लास:

अथ लक्षण निरूपण:—लक्षणा को लक्षण—

नासत परगट अर्थ युत, आन अर्थ जहँ होइ ।
रूढ़ि परोजन ते जँही, कही लक्षणा सोइ ।।४०७।।

यह कवित्त रूढ़ि कहावै परसिद्ध प्रयोजन कहावै कारन दुहूं को उदाहरण: —

दोहा— कै कलिगु अति साहसी, यह रूढ़हि ते जानु ।
गंगा भीतर भानु यह, परोजन हिते मानु ।।४०८।।

यह कवित्त कलिग शब्द ते प्रगट अर्थ देश को कहत है सुयद्ध अर्थ

को नासु करि कलिग देश बासि पुरुषन को कहत है सो यह रूढ़ि ते जानिबो यह प्रसिद्ध है कै कलिग बासी बड़े योद्धा होति है। अरु गंगा शब्द प्रवाह को कहत हैं पय वहाँ घर की असंभावना ते प्रवाह रूप अर्थ को नासु करि गंगा शब्द तीर को कहत है सुशीतलता पवनतादि प्रयोजनु है सुयह परोजन ते जानिबो।

अथ लक्षण के भेदन को विचार

शब्द लक्षणा बाल के, मूदे बिन मूदेहु।
भई लक्षणा भाँति द्वै, कवि भूषण इमि एहु ।।४०९।।

यह कवित्त जा लक्षणा ते जानियत है ताको कहै याजो है शबदुता शब्द के मूदे अरु बिन मूदे लक्षना दुई भाँति जानवो जैसे कही "सुरंग धावतु है" यहाँ लक्षना करि कह्यो जो तुरंग यह शब्द सो मूंदो है अरु जैसे कही कि "सिंहु यहै राजा" यहाँ विषय सिंहु यह जो लक्षणा तेहि करि कह्यो राजा यह शब्द सो मूदो नाहि आहि प्रगट कह्यो यहै कै सिद्ध यहै राजा जैसे मूदो अरु बिन मूदे लक्षण द्वै भाँति है ऐसे तीन भाँति लक्षणा और कहियतु है।

दोहा— सिद्धि लक्षण जहाँ एक विब, साध्य लक्षणा जानु।
साध्य अंग लक्षणहि कहि, तीजे जानि बखानु ।।४१०।।

यह कवित्त जहाँ नाही कह्यो जो अर्थ तहाँ सो लक्षणाकरि जानि विसो कहावै सिद्धि लक्षणा जैसे मूरख सों कही अरे पाथर मारो कह्यो समुझि यहाँ विषै पाषाण शब्द ते होति जो है लक्षणाते हते मूरख यह नाहीं कह्यो जो है अर्थ सो जानि अरु है यह कहावै सिद्धलक्षना जहाँ विषे कहो जो है अर्थं सोइ लक्षना ते जानिये सो कहावै साध्य-लक्षना। जैसे तरुनीचितव निसों सुधाकी वरषा है। यहाँ विषै कह्यो जु है तरुनी चितवनि रूप अर्थु तेहि विषै लक्षना की जाति है सुयहाँ कहावै साध्य लक्षना अन परोजन जैसे कही की सिंह राजा यहाँ

बिषै सूरता रूप जो है परोजनु सों अति प्रगट है। अन प्रयोजन जैसे कह्यौ कि पटु जराइ यही बिषै पट की एक कोद जरी यहाँ तो है लक्षना तासों पट पहिरिबे माह होवै तहाँ तो है सजेता तासों अनु प्रगट है।

दोहा— प्रगट परोजन भाँति द्वै, को कवि भूषण हात।
एक निराधार दूसरो, अर्थ ते करहु उदोत ॥४११॥

यह कवित्त निराधार जैसे दिया को बताइवो कह्यौ चाहियत है तहँ अमंगल को डर इहाँ पुरो दिया करो यह कहियत है तहाँ अमंगल को दूर करिबो जो है परोजनु सों निराधार है ताते राजा हीं बिषै ताहो संभवतु है अर्थ ताकी सिद्धि को जो है लक्षणा सो कहावै साध्यांग जैसे गंगा भीतर भौन है इहाँ बिषे गम्भीर ताइ भौन की असंभवता है सो ताकी संभवता को गंगा तीर बिषे लक्षना करि अतु है सो यहाँ साध्यांग लक्षना जानिवी हेतु।

दोहा— हेतु परोजन भाँति द्वै, कवि जन करतु बखानु।
प्रगट एक पुनि दूसरो, अन परगट इमि जानु ॥४१२॥

ता परोजन ते लक्षना होत है सो दुई भाँति एक प्रगट दूसरी अप्रगट

अथ अर्थगत--

जैसे राजा की कीरति सरद ऋतु की चादनी है यहाँ बिषे उजराइ जो है परोजन सो अर्थगत जानिवो।

दोहा—अर्थ में करत उदोत जो, परोजन सो दुई भाँति।
प्रथम लक्ष इत दूसरो, लक्ष कथित उतपात ॥४१३॥
जाकी कीजे लक्षना, सोई लक्ष्य बखानु।
आकी कीजै लक्षना, सोई लक्षन जानु ॥४१४॥

जैसे कही की तरुनी को मुखु चन्द्रमा यहाँ विषे कान्ति मता जो है परोजनु सो लक्ष्य है जो है चन्द्रमा ता विषे थिति है ऐसी प्रतीति होति है अरु चन्द्रमा तरुनी को मुख आइ यहाँ लक्ष कवि के लक्षना करि चन्द्रमा विषे वदन पर संयुक्त की जतु है अरु यहाँ विषे कांति-मता की परितीति चन्द्रमा जो है लक्ष्यता विषे नाही होति जाते चन्द्रमा की परतीति पहिले ही होति है यह लक्षकु जो है मुख ता विषे कांति मता जो है परोजनु ता परतीति होत है यह ठीक।

दोहा— प्रगट परोजन सों जहाँ, लक्षक में थित होइ।
कही विचक्षण लक्षणा, कवि भूषण कवि सोइ ॥४१५॥

जैसे कही की सिंह है राजा यहाँ विषे शूरता जो है राजा ता विषे प्रगट है।

दोहा— अन परगट एकु दूसरो, निराधार इमि जानु।
लक्ष्य में थित जो परोजनहि, तीजे करत बखानु ॥४१६॥

अनपरगट जैसे पटु जरो निराधार जैसे दिया पूरो करो लक्ष्य में जैसे तरुनी मुख चन्द्रमा।

दोहा— सन्मुखता अरु निकटता, वा अनुहारि प्रतीति।
कारज कारन भाव अरु, वाच्य वाच करि रीति ॥४१७॥

इनते होति है लक्षना, कवि भूषण जिय जानु।
बीज लक्षना के मन, हुइ सम्बन्ध बखानु ॥४१८॥

सन्मुखता जैसे कही की मेरी अंगुरिन के आगे हाथिन को समूह है यहाँ विषे मेरी अंगुरिन के आगे हाथिन समुहे जो ठौर है ता विषे हाथी है यह लक्ष ते जानियत है। निकटता जैसे गंगा भीतर भौनु यहाँ विषे गंगा के निकट ठौर घरु है यह जानियतु है जहाँ सांची निकटता नाहीं वहाँ जो जो निकट ताका प्रतीति सो कहावै वा अनुहारि प्रतीत

जैसे कही की परवत ऊपर चन्द्रमा यहाँ विषे सांची निकटता नाँही आहि पै निकटता की प्रतीति होति है जाते वस्तु होई सो कहावै कारनु अरु जो वस्तु होति है सो कहावै कारजु जैसे कही कि उद्यम साधनु आहि यह विषे उद्यम कारनु आहि धनुकार जु है वाच्य कहावै अरथु वाचक कहावै जेहिते अरथ उपजत है जैसे कले शते दुख ध्यान होत है।

दोहा— ओसर समता साथते, विपरीतहु ते ठानु।
करतूतिहूँ ते लक्षना, पाँच भाँति इमि जानु ॥४१९॥

ओसर जैसे कही के आयो यहाँ सैंधव घोरे को कहियतु है अरु लोहन को चलिबो को ओसरु होइ तो घोरा आनवे को ज्ञान होत है अरु जो भोजन को अवसर होय तो लोनु आनिवे को ज्ञानु होत है समता जैसे मुख चन्द्रमा साथ ते जैसे कही कम नैता लेहैं यहाँ जाके हाथ कमान होय ताहू सौ कमनैनु कहियतु है की विपरीति जैसे चोरु को शाह कहितु है जैसे जोद्धा कहति जुद्धि करि देखि कहियतु है कि यह अर्जुन है इन भाँतिन और उदाहरण जानिवो। यहाँ भाँति लक्षना को वी जभूत से है सम्बन्धित नहिं कहियतु है सो तो कहिकै और भाँति की तजे है लेकर लक्षना को भेद कहियतु है।

दोहा— आरोपा एक दूसरे, अध्यवसाना ठानु।
गौणी तीसरि चौथिये, शुद्ध लक्षना जानु ॥४२०॥

आरोप कहावै जहाँ लक्ष्य अरु लक्षक इनु दोनों को प्रयोगु होय अध्यवसाना कहावै जहाँ लक्षक को प्रयोग होइ, गौणी कहावै जहाँ सूरता आदि दै गुण जो तिन के सम्बन्ध करि प्रयोग होइ, शुद्धा कहावै जहाँ गुण शब्द को प्रयोगु होइ गौणी प्रयोगु यथा—सिंह है राजा यहाँ सिंहु है जो लक्ष्य अरु लक्षक जो है राजा अरु सूरता जो है गुण ताके सम्बन्ध करि प्रयोगु है। शुद्धा आरोप यथा—कलिंग पुरुष जुद्ध करति

हैं यहाँ कलिंग लक्ष है पुरुष लक्षक है अरु गुण सम्बन्ध करि प्रयोगु नाहीं आहि, गौणी अध्यवसाना चन्द्रमहि आहि या भाँति चारि प्रकार लक्षणा जानिवो ।

दोहा यथा—

उपादाननते जानि एकु अपरन विधि जानु ।
कवि भूषण इमि लक्षना, षट प्रकार अनुमानु ॥४२१॥

एक उपादान लक्षणा दूसरी अपरन लक्षणा । उपादान कहावै अपनी सिद्ध को आपहू कही जैसे कही कि बान चलत है यहाँ विषे बानन को आपनो चलिवो ताकी सिद्धि को अपनो बोलिवो अपुरुषन कहत है है अपरन लक्षण कहावै जहाँ अपनी सिद्धि को अनुपमो अनत ही आरोपन करिवै जैसे गंगा भीतर भौनु है यहाँ विषे भौनु अपनी सिद्धि को गंगा को भीतर छोड़ि तीर विषे अपनो अपरनु करतु है ।

दोहा— लक्षक में की लक्ष्य में, जित उत करषु कहोइ ।
कै अप करषु जो लक्षना, द्वै भाँतिन करि होइ ॥४२२॥

लक्षक विषे उत्कर्ष जैसे विद्या जो अचलु धनु है यहाँ विषे लक्षकु जो धन है ता विषे उत्कर्षु जैसे सरस जो है कवित सोइ सुधा आहि । यहाँ विषे लक्ष जो है कवितु ता विषे सरसता रूप उत्कर्ष है ।

दोहा— हेतु सहित यक लक्षना, भेद सहित इमि जानु ।
और जानु द्वै भेद ए, कविवर करत बखानु ॥४२३॥

हेतु सहित लक्षना जैसे सुन्दरताकारि राजा कामु है यहाँ विषे सुन्दरता हेतु है । भेद रहित लक्षणा जैसे मानहु तिया जो है सो देह धरे रति आहि यहाँ विषे तिया सों अरुरतिसों भेदु नाहीं ।

दोहा— असी भेद कर लक्षना, कविवर करत बखानि ।
कवि भूषण निज बुद्धिवर, लेत जान मुनि जानि ॥४२४॥

इति श्री गहरवार बुन्देल वंश वारिज विकासन मार्तण्ड राज्य लक्ष्मी रक्षण विचक्षण दोर्दण्ड महावीराधिबीर राजा धिराज श्री राजा देवीशाहि देव प्रोत्साहित त्रिपाठी रामेश्वर आत्मज कवि भूषण मुरलीधर विरचित अलंकार प्रकाशे लक्षना निरूपनो नाम नवो उल्लासः ।

अथ अभिधा निरूपण तत्र अभिधा लक्षण—

दोहा— काहू धर्म हिलै शब्दु, जग में ठवतु प्रचारु ।
प्रगट अर्थ जहं ते करत, सो कहि अभिधा सारु ।।४२५।।
जाति ते गुन करतूति ते, वस्तु मिलाप ते ठानि ।
संज्ञाते निर्देश ते, छहूँ ते अभिधा जानु ।।४२६।।

जाति से जैसे ब्राह्मणु गुण ते जैसे नील । क्रिया ते जैसे-सोई, दानु वस्तु मिलाप ते जैसे धानुखु संज्ञाते जैसे नाना मामा निर्देश कहावै जहाँ कछु कह्यो चाहियै वहाँ वाको एकु आखर कहि पुनि वाको और आखरु कहि जैसे कष्टहि मिला जो है सुहिह यह जुत जो है रे तेहि मारो यहाँ अभिधाते समुझियतु है कै कंस हरि मारो इवि अभिधानु ।

दोहा— चूक परी जो होइ इन, दूपन नित जित देहु ।
सुकवि राजा परस्वार थिहु, सों सँवारि तहं लेहु ।।४२८।।
जो कविता इत है बनी, सो सब गुर परसाद ।
जो न बनी कविता इतै, है सो मेरो अनुवाद ।।४२८।।

श्री राजा देवीशाहि कीनो कवित्तः—

लिखन की आदि अरु बड़े न की नाम आदि श्री देवी जगत में जहाँ तहाँ गाई है ।
चारों युग सबै देव करैं सदा से वते री पावै कोटि काम नाभि तन मन धाई है ।
अच्युत अनंत अविनाशी जू की पट रानी छीरनिधि मथे देव देव तुम पाई है ।
नितु मति भगति विचारि कर करु ना हीं ताते प्रभु प्रिया देवीशाहि को सहाई है ।।४२९।।

अन्यच्च-

मानसर तुम हम हंस हैं सहसु अंशु तुम ही हमारी गति कंज गुन जोरी है।
स्वाँति को सलिल तुम सागर सरूप हम तुम घन घोरि जोति दामिनि तौ मोरी है।
कहें कवि भूषण रसीले राजा देवीशाह तुम तौ बसन्त ऋतु हौं रसाल बौरी है।
तुम अरविन्द हम मिलत मलिन्द आनि अमिय को कंद तुम चन्द हौं चकोरी है ॥४३०॥

अन्यच्च—

जब लगें जगमगें गिरजा गिरीश अंग जब लों बसत हरि हिये श्री चाइ सों।
जब लों दिपति दिन मनि देव मग जौ लें जगतु जपतु राम नाम सत भाइ सों।
अलंकार प्रकाश तौलें भूषित करौ कविवर बानी बनि तानि कौ बनाइ वैसों ॥४३१॥

राम कृष्ण कश्यप कुलहि, रामेश्वर सुव तासु।
ता सुत मुरलीधर कियो, अलंकार परकासु ॥४३२॥
पाँच सुन्न सत्रह, वरिष, कातिक सुदि छटि जानु।
अलंकार परकास को, कवि कीनो निरमानु ॥४३३॥

संवत् १७०५। इति श्री गहरवार बुन्देल वंश वारिज विकासन मार्तण्ड राज्य लक्ष्मी रक्षण विचक्षण दो दण्ड महावीराधि वीर राजाधिराज श्री राजा देवीशाहि देव प्रोत्साहित त्रिपाठी रामेश्वरात्मज कवि भूषण मुरलीधर विरचिते अलंकार प्रकाशे अभिक्षा निरूपणो नाम दस्समो उल्लासः। समाप्तम्